Ph.D THESIS

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध जीवन का यथार्थ

SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM MEIN
VRUDH JEEVAN KA YATHARTH

Thesis
Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY
In
HINDI
Under the Faculty of Humanities

By
ब्लेसी. वी
BLESSY.V

Dr. N.G. Devaki
Professor and
Head of the Department

Prof. (Dr.) K. VANAJA
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022

October 2014

Certificate

This is to certify that this thesis entitled **SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM MEIN VRUDH JEEVAN KA YATHARTH** is a bonafide record of research work carried by **Mrs. Blessy.V** under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Prof. (Dr.) K. VANAJA
Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi - 682 022

Place: Cochin

Date : /10/2014

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis entitled **SAMAKALEEN HINDI KAHANIYOM MEIN VRUDH JEEVAN KA YATHARTH** based on the original work done by me under the guidance of **Dr. K. VANAJA**, Professor, Dept. of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin - 682022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

BLESSY. V
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 682 002

Place: Cochin

Date : /10/2014

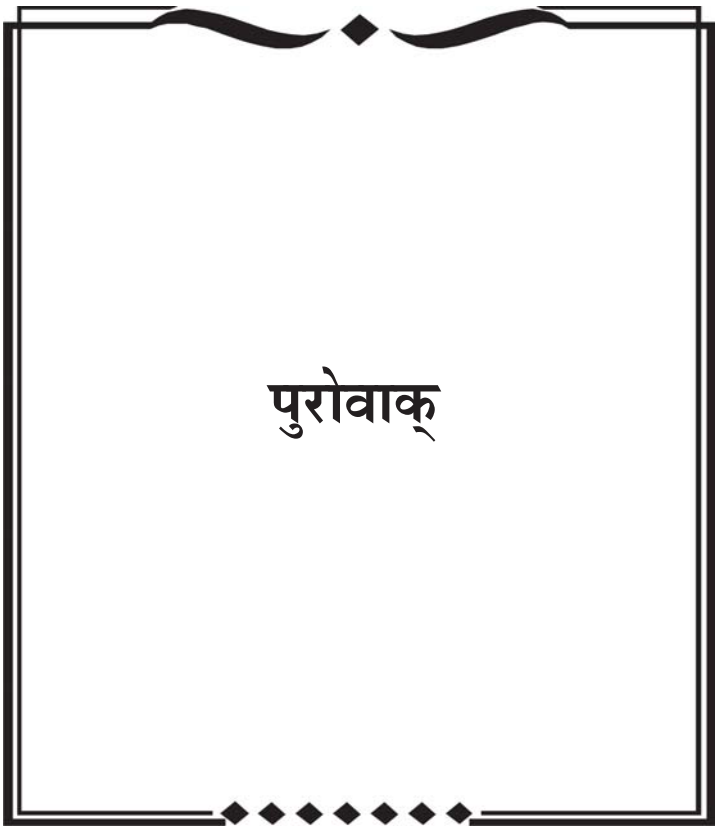

पुरोवाक्

पुरोवाक्

सच्चा साहित्य वही होता है जो अपने समय की गतिविधियों और समस्याओं को बिना पर्दे के हमारे सामने प्रस्तुत करता है । समाज में स्थित सभी विसंगतियों को आसानी से जनता के बीच व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है कहानी । समकालीन कहानीकार वर्तमान समय के हाशियेकृत सभी पहलुओं को अपनी कहानियों के ज़रिए अंकित कर रहे हैं, जिनमें प्रमुख है - वृद्धजनों की समस्या । बढ़ते उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के कारण परिवार के बूढ़े-बुजुर्ग आजकल उपेक्षित रह गए हैं । लेकिन ये लोग अपनी अस्मिता केलिए संघर्ष करने लगे हैं । परिवार और समाज द्वारा अपने पर होते अत्याचार को अपनी नियति मानकर सहने के बजाए ये लोग उसके विरुद्ध लड़ने लगे है । जिसका चित्रण समकालीन कहानियों में हुआ है । इस शोध प्रबन्ध का विषय है - "**समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजीवन का यथार्थ**"।

अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने इस विषय को पाँच अध्याय में विभाजित किया है । पहला अध्याय है - '**समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य**'। इस अध्याय के अंतर्गत भूमिका के रूप में समकालीन हिन्दी कहानी के विकास क्रम को दिखाते हुए समकालीनता पर प्रकाश डाला गया है । आगे समकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ जैसे नवउपनिवेशवाद, भूमण्डलीकरण, सांप्रदायिकता आदि का जिक्र करते हुए उसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिसके अंतर्गत स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, राजनीतिक खोखलापन, उपभोग संस्कृति और वृद्ध विमर्श का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

दूसरा अध्याय है - **"समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध जीवन की शिथिलताएँ'**। वार्धक्य तक पहुँचते ही वृद्धजनों को कई समस्याओं से जूझना पडता है । इस अध्याय में इन समस्याओं का चित्रण हुआ है । समकालीन कहानीकारों ने वृद्धजनों की शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक शिथिलताओं को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है । इस पर विस्तार से इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

तीसरा अध्याय है - **"समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का आत्मसंघर्ष"।** बुढ़ापे तक पहुँचते ही व्यक्ति के मन में एक प्रकार का आत्मसंघर्ष पैदा हो जाता है । अपने अस्तित्व को बनाए रखने केलिए वह खुद से, परिवार से और समाज से भी लडने लगता है । इस अध्याय में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच की दरार, मूल्यों का विघटन और बच्चों की उपभोग संस्कृति, घर-परिवार में उपेक्षा और अधिकारों से वंचित बुढ़े, समय के साथ समझौता करते एवं अस्मिता केलिए संघर्ष करते वृद्धजन आदि पहलुओं पर विचार किया गया है ।

चौथा अध्याय है - **"समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों के अकेलापन और अनाथत्व"**। वर्तमान माहौल में किसी भी व्यक्ति का अकेला पड जाना स्वाभाविक है । अणु परिवार में अकेलापन, नौकरीपेशा संतान खासकर विदेशों में बसे संतान, सेवानिवृत्ति, वैधव्य, वृद्ध सदनों का जीवन आदि के कारण वृद्धजन बिल्कुल अकेले और अनाथ हो गए है । इस अध्याय में इन सभी मुद्दों पर प्रकाश डालने का प्रयास हुआ है ।

पाँचवाँ अध्याय है - **"समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का प्रतिरोध"**। माँ-बाप, चाहे वे बूढ़े क्यों न हों, समाज का अभिन्न अंग है। अपनी कहानियों के ज़रिए रचनाकारों ने अपने अधिकार केलिए लड़ते वृद्धजनों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । समकालीन कहानियों के वृद्धजन अपने वार्धक्य की ज़िन्दगी को योजनाबद्ध कर लेते हैं । वे मित्रों के एवं वृद्ध संगठनों की सदस्यता के सहारे अपने अकेलेपन को दूर करते हैं । आर्थिक रूप से भी अपने को सशक्त रखते हैं । इस अध्याय के ज़रिए उनके प्रतिरोधात्मक स्वर को उजागर करने का प्रयास हुआ है ।

अंत में उपसंहार है । इसमें अपने विश्लेषणात्मक अध्ययन के उपरांत जो निष्कर्ष निकाला गया है, उस पर प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रोफेसर डॉ. के. वनजा जी के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । समय समय पर उन से मिले बहुमूल्य सुझावों एवं सलाहों से ही यह कार्य संपन्न हो पाया है । मैं उन्हें हार्दिक कृतज्ञता आर्पित करती हूँ।

मानविकी संकाय के अध्यक्ष और मेरे डॉक्टरल कमिटि के विषय विशेषज्ञ डॉ. एन. मोहनन जी के प्रेरणा, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन मुझे निरंतर मिलता रहा है । उनके प्रति भी मैं हार्दिक आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हूँ ।

हिन्दी विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ कि वे मुझे निरंतर प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ ।

मैं अपने प्रिय मित्रों एवं शुभचिन्तकों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरी सहायता की है, विशेष रूप से संध्या.एस के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ ।

इस अवसर पर मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति विशेषकर मेरे पतिदेव के प्रति कृतज्ञता आर्पित करती हूँ । यह शोध प्रबंध मैं अपने स्वर्गीय प्रिय पापा और छोटे पापा को समर्पित करती हूँ । सर्वोपरी ईश्वर के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनकी कृपा से यह शोधकार्य संपूर्ण हुआ है ।

मैं यह शोध प्रबंध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ। त्रुटियों एवं कमियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

सविनय

ब्लेसी. वी

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682 022

तारीख :

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-44

समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य

हिन्दी कहानी का विकास क्रम - आधुनिकता - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी (नई कहानी-अकहानी-अचेतन कहानी-सहज कहानी-समान्तर कहानी - सक्रिय कहानी-जनवादी कहानी) -आँचलिक कहानी - समकालीन कहानी-समकालीनता की परिस्थितियाँ - (नवउपनिवेशवाद-भूमंडलीकरण-सांप्रदायिकता) समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (स्त्री विमर्श - पारिस्थितिक विमर्श - राजनीतिक खोखलापन - उपभोग संस्कृति)

दूसरा अध्याय 45-85

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध जीवन की शिथिलताएँ

शारीरिक शिथिलताएँ (नींद की कमी-स्वाद नष्ट होना-आँखों का धुंधलापन -थकावट महसूस होना - झुर्रियों का पडना-यादाश खोना) आर्थिक शिथिलताएँ, मानसिक शिथिलताएँ (मृत्यु-भय-वैधव्य-पति-पत्नी के आपसी बिछुडन - सत्ता का बदलना - बच्चों की उपेक्षा)

तीसरा अध्याय 86-130

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का आत्मसंघर्ष

नयी पीढ़ी और वृद्धों के बीच की दरार-मूल्यों का विघटन और बच्चों की उपभोग संस्कृति - घर परिवार में उपेक्षा और अधिकारों से वंचित होना - समय के साथ समझौता करना - अस्मिता केलिए संघर्ष

चौथा अध्याय 131-177

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजीवन के अकेलापन और अनाथत्व

अणु परिवारों में अकेलापन - नौकरी-पेशा अथवा विदेशों में नौकरी करनेवाले संतान - वैधव्य -सेवानिवृत्ति -वृद्ध सदनों का जीवन

पाँचवाँ अध्याय 178-214

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का प्रतिरोध

जीवन में योजनाबद्ध होना - घर छोड़ना - वृद्धाश्रम में जगह ढूँढना - वसीयत बदलना - आत्महत्या -अकेलेपन में दूसरी शादी - मित्रता - आर्थिक दृढ़ता - स्वावलंबन - वृद्ध संगठनों में सदस्यता

उपसंहार 215-218

परिशिष्ट 219

शोधछात्रा के प्रकाशित शोध लेख

सन्दर्भ ग्रंथ सूची 220-231

पहला अध्याय

समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य

समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य

हिन्दी कहानी का विकास

आधुनिक युग की सबसे लोकप्रिय और सशक्त साहित्यिक विधा है कहानी । हिन्दी साहित्य में भी कहानी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है । जीवन से सर्वाधिक गहरा संबन्ध रखनेवाली एक विधा है कहानी । जीवन-यथार्थ को कल्पना के साथ मिलाकर, कहानीकार उसे छोटी-छोटी इकाइयों में बदलकर हमारे सामने प्रस्तुत करते है ।

आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही माना जाता है । इस समय के प्रमुख कहानियों के रूप में 'इन्दुमती' (किशोरीलाल गोस्वामी) 'मन की चंचलता' (माधवप्रसाद मिश्र), 'प्लेग की चुडैल (भगवानदीन बी.ए), 'ग्यारह वर्ष का समय' (रामचन्द्र शुक्ल), 'दुलाईवाली' (बंगमहिला) आदि उल्लेखनीय है । इसी समय की अन्य कुछ प्रमुख कहानियाँ है, 'उसने कहा था' (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी), मिलन' (ज्वालादत्त शर्मा), 'रक्षाबन्धन' (विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक) 'झलमला (पदुमलाल पुन्नालाल बखशी) आदि।

आगे चलकर प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को जीवन यथार्थ से जोड़ दिया । उनकी 'पंच परमेश्वर' 'नमक का दरोगा' कहानियों में आदर्शोत्मुकता, इतिवृत्तात्मकता और घटना-बहुलता हमें देखने को मिलती है । उन्होंने जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं को लेकर कहानियाँ लिखी

हैं । उन्होंने तत्काल के दुःख-दर्द, हार-जीत और न्याय-अन्याय को प्रस्तुत करने का प्रयास किया । उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागोई, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है । जोकि वे ग्रामीण जीवन से अधिक जुड़े थे, उनकी अधिकांश कहानियों में गाँव की ज़िन्दगी अभिव्यक्त है । उनकी भाषा बोलचाल की मुहावरेदार, चुस्त और सजीव भाषा थी । उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं- 'बलिदान', 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'विचित्र होली', 'गृहदाह', 'हार की जीत', 'परीक्षा', आपबीती', 'उद्धार', सवा सेर गेहू', सतरंज की रिवलाडी' 'माता का हृदय', 'कजाकी', सुजान भगत', 'इस्तीफा', 'अलग्योझा', 'पूस की रात' 'तावान' 'होली का उपहार', 'ठाकूर का कुआ', बेटोंवाली विधवा' ईदगाह' 'नशा', बडे भाई साहब', 'कफन' आदि ।

इस काल के दूसरे प्रमुख कहानीकार है 'जयशंकर प्रसाद'। वे रुमानी स्वभाव के व्यक्ति थे । "उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण, भावुकता, कल्पना, की ऊँची उडान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्व मिला है ।"[1] उन्होंने मनुष्य के भीतरी भाव-द्वन्द्व को व्यक्त करने का प्रयास किया है । वे मुख्यतः रोमांटिक कहानीकार रहे । प्रेम और भावात्मकता की प्रधानता उनकी कहानियों में अधिक है । आधुनिक कहानी की तुलना में संस्कृत-गद्यकाव्य से अधिक निकट हैं उनकी कहानियाँ । नारी पात्रों की सृष्टि में भी वे

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 581

अद्वितीय रहे । उनकी प्रमुख कहानियाँ है - 'चक्रवर्ती का स्तम्भ', 'खंडहर की लिपि', 'पत्थर की पुकार', उस पास का योगी', 'प्रतिमा', 'आकाशदीप', कला', 'देवदासी', आंधी', मधुवा, 'इन्द्रजाल', सालवती आदि ।

इनके अलावा जैनेन्द्र, पाण्डेय बेचन शर्मा उर्ग, निराला, सियाशरण गुप्त, हृदयेश, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, भगवती प्रसाद वाजपेयी, चतुरसेन शास्त्री, विनोद शंकर व्यास, वाचस्पति पाठक आदि इस समय के उल्लेखनीय है ।

सन् 1936 को प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई । इस सम्मेलन ने साहित्य को प्रतिबद्धता और उद्देश्यपूर्ण दिशा की ओर मोड दिया। प्रेमचन्द में शुरु हुई जीवनोन्मुखता को यशपाल ने आगे बढ़ाया । जैनेन्द्र ने व्यक्ति को केन्द्र में मानकर उसके मानस की छानबीन की । इन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से समेटकर व्यक्तिगत और मनौवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया । उनकी वैयक्तिकता का अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी में विकास हुआ ।

जैनेन्द्र ने व्यक्ति-मन की शंकाओं, प्रश्नों तथा गुत्थियों का अंकन किया । उनकी कहानियों का मुख्य विषय नारी है । उनकी प्रमुख कहानियाँ है - 'हत्या', खेल, बाहुबली, नीलम देश की राजकन्या, दो चिडिया आदि ।

प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख लेखक थे यशपाल । वे मार्क्स के साथ-साथ फ्रॉयड से भी प्रभावित थे । उन्होंने अपनी कहानियों में वर्ग-संघर्ष और भौतिकवादी नैतिक मूल्यों का समर्थन किया है । 'पिंजरे की उडान', 'फूलों का कुर्ता', 'तर्क का तूफान' आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह है ।

अज्ञेय ने अपनी कहानियों में मुख्यतः व्यक्ति का आत्मसंघर्ष तथा व्यक्ति और परिवेश का संघर्ष दिखाये हैं । उनकी प्रारंभिक कहानियों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति उपलब्ध है तो उनकी परवर्ती कहानियों में नए यथार्थ के विविध आयाम हैं । 'विपथगा, 'परंपरा', 'कोठरी' की बात', 'शरणार्थी, 'अमर वल्लरी', आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं । इलाचन्द्र जोशी की कहानियाँ प्रायः नीरस, असंवेदनीय और अपठनीय है । वे अपनी कहानियों में 'मनोवैज्ञानिक केस हिस्ट्री को पिरोते है ।"[1] 'खंडहर की आत्माएँ', डायरी के नीरस पृष्ठ', 'आहुति' और 'दीवाली' उनके प्रमुख कहानी संग्रह है । अश्क की कहानियों के विषयवस्तु और शिल्प दोनों में विविधता है । उनकी कहानियाँ मनोविश्लेषण, प्रतीक और सेक्स पर आधारित है ।

विष्णु प्रभाकर, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण, भैरवप्रसाद गुप्ता तथा अमृतराय भी स्वतंत्रता से पहले के प्रमुख कहानीकार है । प्रभाकर की कहानियाँ प्राचीन संस्कारों से जुडी हुई है । वही 'निगुर्ण' की कहानियों में

---

1. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी का इतिहास, पृ. 420

भावुकता अधिक है तो भैरवप्रसाद गुप्त तथा अमृतराय की कहानियाँ मार्क्सवाद से प्रभावित हैं ।

सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ कहानीकारों की मानसिकता में भी बदलाव आ गया । वैचारिक तौर पर देश का पुनर्जन्म हुआ । इस प्रकार परंपरा के प्रति तार्किक-वैज्ञानिक दृष्टि को लक्षित करके 1950-51 के आसपास कहानियाँ लिखी गई । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ सांप्रदायिकता का जो वहशीपन दोनों देशों के बीच उभर आया, वह लंबे समय तक पनपता रहा । स्थानान्तरण के समय हिन्दु-मुसलमान जनता के बीच जो सांप्रदायिक दंगे हुए, उससे आज़ाद मानसिकता पर बहुत गहरा आघात हुआ । नये कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से अपने अंदर घुटते मनुष्य को बाहर निकालकर रख दिया । इन लोगों ने मनुष्य के अनुभवों को सामाजिक सन्दर्भों के साथ प्रामाणिक भी बना दिया । इसके अलावा नये मूल्यवाले चरित्रों की सृष्टि भी हुई जो किसी न किसी संघर्ष से सम्प्रक्त थे । साहित्यकारों के इस बदले दृष्टिकोण को हम 'आधुनिकता बोध' की सज्ञा दे सकते है ।

आधुनिकता

हिन्दी में आधुनिक साहित्य का आरंभ भारतेन्दु से हुआ । उस समय से स्वतंत्रता प्राप्ति तथा विभाजन के पहले का समय तक को हम आधुनिक

कह सकते हैं । 'आधुनिकता बोध' हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता के बाद के परिवेश में दिखाई देती है । भारत-पाक विभाजन ने जन-मानस को हिलाकर रख दिया । जिस स्वतंत्र भारत का जनता ने सपना देखा था, उसका नामोनिशान तक नहीं रहा । इस स्थिति ने एक प्रकार की निराशा खड़ी कर दी । जन-मानस में एक प्रकार की अनास्था और अनिश्चितता छा गई । साहित्य में भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा । फलस्वरूप पुरानी मानसिकता से हटकर, एक नए भावबोध को ग्रहण किया गया, जिसने इतिहास, परंपरा, पुराण आदि को नये सिरे से मूल्यांकित किया । यह 'आधुनिकता' का परिणाम है । मनुष्य के खोये हुए व्यक्तित्व और पहचान की खोज-प्रक्रिया ही आधुनिकता है । डॉ. अशोक भाटिया के अनुसार- "आधुनिकता परंपरा की विरोधी न होकर परंपरा का पुनःरांकन है । वह नए सन्दर्भों में परंपरा में परिवर्तन लाने तथा उसे संस्कार देने का नाम है । आधुनिकता में नये जीवन-मूल्यों का सृजन परंपरा को दृष्टि में रखकर किया जाता है ।"[1]

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने मनुष्य की चिन्तन को बहुत कुछ बदल दिया । उसने पाया कि वर्तमान परिस्थिति में वह बहुत ही असहाय, क्षुद्र और निरर्थक प्राणी है । साथ ही नीत्शे की घोषणा कि ईश्वर मर गया' ने एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ही ला दिया । धर्म-ग्रन्थों में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म,

1. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 16

अच्छे-बुरे की जो कसौटियाँ थी, उसकी प्रामाणिकता नष्ट हो गई । आधुनिकता ने रूढ़ियाँ, परंपरा, अज्ञान आदि का विरोध किया । आधुनिकता ने ईश्वर का निषेध किया । उसके पीछे अनास्था और निराशा का स्वर है ।

आधुनिकता, पाश्चात्य अस्तित्ववाद और सामाजिक यथार्थ से प्रभावित है । फिर भी अस्तित्ववाद को अधिक महत्व दिया गया । यह इसलिए हुआ क्योंकि उस समय की परिस्थिति में मनुष्य निराशाग्रस्त था और उसके मन में दुःख, निराशा, अकेलापन, मृत्यु-बोध, स्वतन्त्रता, त्रास आदि पर कई सवालें थे । अस्तित्ववाद ने अपने को ठोस अनुभवों तथा व्यक्ति को इन सवालों के साथ जोड़ दिया । उसने अपने पूर्ववर्ती दर्शन और विज्ञान की अमूर्तता पर आक्रमण किया । आधुनिकता में मानव मुक्ति और स्वतन्त्रता की कामना है। वह उन सभी विचारों के विरुद्ध है जो व्यक्ति को अस्तित्वहीन बनाता है । उसकी दृष्टि में मनुष्य वस्तु और मशीन ने होकर एक क्रियात्मक शक्ति है ।

इस प्रकार देखा जाए तो आधुनिकता मनुष्य के आधुनिक बनने के परिणामस्वरूप उत्पन्न एक मानसिकता है । इसमें प्रश्न चिह्नों की निरन्तरता है । ये प्रश्न चिह्न उसके भीतरी संघर्ष को लेकर है । आधुनिकता ने मनुष्य को तार्किक बना दिया । जिसके कारण वह विद्रोही बन गया । स्वातंत्र्योत्तर कहानी इसी आधुनिकता की उपज है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी

नई कहानी

1955 में 'कहानी' पत्रिका के पुनःप्रकाशन के साथ-साथ 'नई कहानी' का भी उत्भव हुआ । यह हिन्दी कहानी का पहला रचनात्मक आन्दोलन था । इस समय के कहानीकारों ने नये-आधुनिकता बोध को लेकर कहानियाँ रची । उनकी दृष्टि में 'नया' या आधुनिकता कोई संज्ञा या विशेषता मात्र नहीं, बल्कि एक प्रक्रिया है जिसकी चेतना ने समकालीन कहानी की भूमि को बदल दिया । नई कहानी में 'यथार्थ' की प्रामाणिकता पर विशेष बल दिया गया है । इसमें व्यक्ति की प्रधानता है, उसका भोग हुआ यथार्थ' का चित्रण है । नई कहानी दौर के सबसे महत्वपूर्ण कहानीकार रहे कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव । इन कहानीकारों ने एक ओर पुराने मूल्यों के प्रति रोमानी दृष्टि प्रकट की तो दूसरी ओर युगीन संक्रमण के दबाव का अनुभव भी किया । कमलेश्वर की कहानियों में जीवन के विविध सन्दर्भ और आयाम दिखायी देते है । इन्होंने अधिकतर, कस्बे से आकर शहर में बसे पात्रों की भटकन, अकेलेपन और सूनेपन को चित्रित किया है । 'मांस का दरिया', खोई हुई दिशाएँ', नीली झील, देवा की माँ', आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं । मोहन राकेश की कहानियों में 'मल्बे का मालिक' प्रमुख है । इसके अलावा 'एक और ज़िन्दगी' 'ठहरा हुआ चाकू', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर' भी ख्याति प्राप्त है । राजेन्द्र यादव की

कहानियों में आधुनिक भाव-बोध अधिक है । 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्मकथा', 'छोटे-छोटे ताजमहल' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं । इन तीनों कहानीकारों के बारे में डॉ. नगेन्द्र का मत है - ''मोहन राकेश तनावों के कहानीकार है, राजेन्द्र यादव की कहानियों में वैयक्तिकता पर सामाजिकता हावी रहती है, कमलेश्वर तनावों के बीच मूल्यान्वेषण केलिए सचेष्ट रहते है।"[1]

आलोच्य काल के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, रामदरश मिश्र, निर्मल वर्मा, अमरकान्त, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, कुष्णा सोबती, मन्नु भण्डारी, ज्ञानरंजन, महीप सिंह, शिवानी, मेहरून्निसा परवेज, विजय चौहान आदि ।

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार निर्मल वर्मा की 'परिन्दे, नई कहानी की पहली कृति है । 'जलती झाडी', पिछली गर्मियों में' आदि उनकी प्रमुख कहानी संग्रह है । 'दोपहर का भोजन', ज़िन्दगी और जोंक', 'डिप्टी कलक्टरी' आदि अमरकान्त की प्रमुख कहानियाँ है । उनकी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की दुःख-दर्द और तकलीफें अधिक चित्रित है। भीष्म साहनी प्रगतिशील चिन्तन के लेखक रहे । 'भटकती राख', 'पटरियाँ', 'अमृतसर आ गया है', 'चीफ की दावत', आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ है

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 677

। धर्मवीर भारती मुख्य रूप से कवि होते हुए भी उन्होंने अपनी कहानियों को कविता से अलग रखा । 'बन्द गली का आखिरी मकान', 'गुलकी बन्नों' 'यह मेरेलिए नहीं आदि उनकी प्रतिनिधित कहानियाँ हैं ।

लेखिकाओं के संसार में मन्नु भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, शिवानी आदि प्रमुख है । उषा प्रियंवदा की कहानियों में बदलती आर्थिक स्थितियों में बनते-बिगाड़ते संबन्धों का चित्रण है । इसके सिवाय उन्होंने भारतीय नारी को विदेशी जीवन परिवेश में रखकर देखने का प्रयास भी किया है । 'वापसी' 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', 'झूठा दर्पण', 'सागर पार का संगीत' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ है ।

मन्नु भण्डारी ने प्राचीन एवं नवीन मूल्यों के द्वन्द्व में फँसी नारी का चित्रण किया है । 'यही सच हैं,' तीन निगाहों की तस्वीर' 'मैं हार गयीं' 'एक प्लेट सैलाब' आदि उनकी कहानियाँ हैं । कृष्णा सोबती ने सेक्स-जन्य भावुकता को अपने कहानियाँ द्वारा दर्शाया है । 'बादलों के घेरे', 'मित्रों मरजानी' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । शिवानी की कहानियों में सेक्स के साथ-साथ नारी मनोविज्ञान को आधुनिक जीवन के नये आयामों में देखने की चाह भी है ।

आधुनिकता-बोध को लेकर कहानी लिखनेवालों में प्रमुख हैं - ज्ञानरंजन, महीपसिंह, गिरिराज किशोर, रवीन्द्र कालिया आदि । ज्ञानरंजन

की 'फेंस के इधर और उधर', महीप सिंह की 'सुबह के फूल' उजाले के उल्लू', 'घिराव', गिरिराज किशोर के 'पेपरवेट' प्रसिद्ध कहानियाँ हैं ।

इस प्रकार हिन्दी कहानी के प्रारंभिक सत्तर वर्षों का इतिहास उसकी युग-सापेक्षता को प्रामाणित करता है । स्वतन्त्रता से पूर्व जो प्रगतिशील भावना रही, वह स्वतन्त्रता के पश्चात् भी विभिन्न लेखकों की कहानियों में उजागर रही । लेकिन जिन रूढ़ियों और स्थापित मान्यताओं के खिलाफ नई कहानी खड़ा किया गया था, उनमें वह स्वयं ही उलझ गई और इसी कारण 1962 तक आते-आते वह बिखर गई ।

अकहानी

"अकहानी आन्दोलन वस्तुतः तत्कालीन मूल्यों तथा कथाशिल्प दोनों के अस्वीकार का आन्दोलन है ।"[1] नई कहानी में जहाँ 'अनुभव की प्रामाणिकता' पर बल दिया गया वहीं अकहानी में 'अनुभव की निजता' पर बल दिया गया । यह पाश्चात्य के 'एंटी स्टोरी' का अनुकरण है । इस आन्दोलन के प्रमुख रचनाकार रहे जगदीश चतुर्वेदी, दूधनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल आदि । इनकी कहानियों में यथार्थ की परिधि कम रही । इन कहानीकारों ने काम-संबन्धों का खुल्ला चित्रण किया गया । उन्मुक्त काम-संबन्धों के नाम पर सभी मर्यादाओं और श्लीलता की सीमाओं को तोड़ने के कारण यह आन्दोलन भी पराजित रहा ।

---

1. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 138

सचेतन कहानी

सचेतन कहानी का आरंभ 'आधार' पत्रिका के नवंबर 1964 में प्रकाशित 'सचेतन कहानी' के विशेषांक से माना जाता है । डॉ. महीप सिंह ने इस आन्दोलन को "सक्रिय भाव-बोध की कहानी' एवं ज़िन्दगी की स्वीकृति की कहानी"[1] माना है । इस समय की कहानियों में यथार्थ का चित्रण भरपूर है। महीप सिंह, हिमांशु जोशी, मधुकर सिंह, सुरेन्द्र अरोड़ा, रामकुमार भ्रमर, हृदयेश आदि इस समय के प्रमुख कहानीकार हैं । इस समय की कहानियों में जीवन मूल्यों का विघटन एवं नगरीय और महानगरीय जीवन की त्रासदी को दिखाया गया है ।

सहज कहानी

इस कहानी आन्दोलन का आरंभ 1968 में 'नयी कहानियाँ' पत्रिका के माध्यम से माना जाता है । यह आन्दोलन भी अन्य आन्दोलनों की तरह नई कहानी के विरोध में था । इस आन्दोलन ने परंपरागत शाश्वत गुण-मूल्यों को स्वीकारा है । यह कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से भी आकृष्ट है । किन्तु इस समय की कहानियाँ केवल शास्त्रीय स्तर तक ही सीमित रह गईं और इसकी रचनात्मकता में कोई परिणति नहीं दिखाई दी । इसी कारण 'नयी कहानियाँ पत्रिका के बन्द होते ही यह आन्दोलन भी समाप्त हो गया ।

---

1. सं. डॉ. महीप सिंह, सचेतन कहानीः रचना और विचार, पृ. 14

समान्तर कहानी

समान्तर कहानी का आरंभ सन 1971 ई से माना जाता है । इसमें मुख्य रूप से आम आदमी के जीवन-स्तर का चित्रण मिलता है । आदमी के जीवन संघर्ष को दिखाने के साथ-साथ उसकी दुर्दशा के कारण बननेवाली शक्तियों का भी पर्दाफाश समान्तर कहानीकरों ने किया । नैतिक मूल्यों के संस्थापन केलिए किए जानेवाला संघर्ष ही इसका केन्द्रबिन्दु है । इस कहानी में जाति और वर्ण की श्रृंखलाओं में जकड़ते भारतीय समाज का नंगा चित्रण है । समान्तर कहानी में पारिवारिक स्तर पर विभिन्न मूल्यों के विघटन को भी रूपायित किया गया है । इसके सिवाय पीढ़ियों के बीच का संघर्ष भी इस समय की कहानियों में व्यापक है । इस समय के प्रमुख कहानीकार रहे- दिनेश पालीवाल, आशीष सिन्हा, स्वदेश दीपक, जितेन्द्र भाटिया आदि ।

सक्रिय कहानी :

सक्रिय कहानी का आन्दोलन सन 1978 से माना जाता है । यह चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी है। यह मनुष्य को अपने अन्दर की कमज़ोरियों के खिलाफ खड़े होने केलिए तैयार कराती है । "सक्रिय कहानी व्यक्तिवादी दानवी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देती है।"[1] वर्तमान आर्थिक-सामाजिक शोषण के विरोध ही इसकी मूल संवेदना रहा । सक्रिय कहानी ने समाज में व्याप्त शोषण के

1. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 145

विरुद्ध आवाज़ उठायी । सुरेन्द्र सुकुमार, रमेश बतरा, राकेश वत्स, चित्रा मुद्गल, विकेश निझावन, धीरेन्द्र अस्थाना आदि सक्रिय कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं ।

जनवादी कहानी

1982 में 'जनवादी लेखक संघ' की स्थापना के साथ जनवादी कहानी आन्दोलन का आरंभ माना जाता है । इस कहानी आन्दोलन ने मध्यवर्ग तथा सर्वहारा पर किए जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष पर बल दिया। इस समय की कहानियों में सर्वाधिक मध्यवर्ग के मोहभंग को दिखाया गया है । जनवादी कहानियों में अनुभव और विचार का सामंजस्य जीवन की समस्याओं के संदर्भ में दिखाया गया है । यह कहानी मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाकर उसे अनुभव से जोड़कर प्रस्तुत करती है । इस समय के प्रमुख कहानीकार हैं - रमेश उपाध्याय, रमेश बतरा, स्वयंप्रकाश, उदय प्रकाश, नमिता सिंह, असगर वजाहत, विष्णु नागर, राजेश जोशी आदि ।

इस प्रकार हिन्दी कहानी के प्रारंभिक सत्तर वर्षों का इतिहास उसकी युग-सापेक्षता को प्रमाणित करता है । विभिन्न कहानीकारों ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप विविध आन्दोलनों के प्रभाव को ग्रहण किया । जहाँ कहानियों के स्वरूप को तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक एवं आर्थिक

परिस्थितियों ने बनाया, वहीं उसकी शक्ति को रेखांकित करने का प्रयास विभिन्न कहानी-आन्दोलनों ने किया । नई कहानी आन्दोलन का कहानीकारों की मानसिकता पर गहरा प्रभाव पडा जबकि अकहानी, सचेतन कहानी आदि आन्दोलनों का कहानीकारों पर विशेष प्रभाव नही पड़ा ।

आँचलिक कहानियाँ

दूसरी ओर छठे दशक में ग्रामांचल की कहानियाँ लिखी गईं । ग्रामांचल के कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणू प्रमुख हैं । शिवप्रसाद सिंह के 'आरपार की माला', 'मुर्दा सराय' 'इन्हें भी इन्तज़ार हैं', मार्कण्डेय के 'गुलरा का बाबा', 'हंसा जाई अकेला', 'महुए का पेड़', 'भूदान' और फणीश्वरनाथ रेणू के 'कुमरी', 'आदिम रात्रि की महक', 'अग्निखोर', रसप्रिया' आदि प्रमुख हैं ।

समकालीन कहानी

आधुनिकता में विज्ञान और शिक्षा ने मनुष्य को ईश्वर और प्रकृति से अलग कर दिया । वह मनुष्य केन्द्रित थी । आधुनिकता में पिछडे वर्ग-लोग, स्त्री, दलित, प्रकृति आदि कम महत्वपूर्ण रहकर, सत्ता, विचार आदि को प्रमुखता दी गयी । लेकिन समकालीनता ने इस केन्द्रीयता को तोड दिया । उसने अपने कालखण्ड की समस्याओं को महत्व दिया । वह समय सापेक्ष्य

है । समय के सच को ईमानदारी से परखने का दृष्टिकोण है 'समकालीनता।'

हिन्दी में 'समकालीन' और 'समसामायिक' शब्द अंग्रेज़ी के 'काण्टेंपोरेरी' तथा कोइवल (Coval) श्ब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त है । इसका सामान्य तथा शब्दिक अर्थ 'एक ही समय में होने या रहनेवाले' के रूप में स्पष्ट होता है । समकालीन की भाववाचक संज्ञा है समकालीनता । यद्यपि इसका शाब्दिक अर्थ 'एक ही समय में होने या रहनेवाले' है, फिर भी किसी कालखंड में मात्र उपस्थित रहने से कोई समकालीन नहीं बनता । "समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करता है । समस्याओं और चुनौतियाँ में भी केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होनी है ।"[1] अर्थात अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना ही समकालीनता है । वह अपने समय के सच को तटस्थता के साथ परखती है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से लगभग पचास वर्षों तक राजनीतिक तथा सामाजिक विसंगतियाँ हमारी चेतना पर छायी हुईं थीं । उनके प्रति हमारा प्रतिरोधात्मक रवैया नहीं के बराबर था । सामाजिक जीवन विभिन्न समस्याओं से जटिल बन गया था । मानव-जीवन जड़ बन गया था । आदमी के सामने उभरी अनगिनत समस्याओं से जूझने केलिए उत्पन्न एक जागरूक चेतना ही

---

1. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय- समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ. 16

समकालीनता है । अर्थात् तत्कालीन समय में छायी हुई विसंगतियों के प्रति 'विरोध' या 'विद्रोह' ही समकालीनता है । इसमें मानवीय हित और प्रगतिशील चेतना समाहित रहती है । यह जनविरोधी नीतियों और कर्मों का विरोध करती है । डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीनता को 'शोषक वर्गों और उनकी शक्तियो-समूहों का ध्वंस, सक्रिय संघर्ष, आक्रामकता आदि से जोडते है।"[1]

समकालीनता' एक दृष्टिकोण है जो वर्तमान जीवन प्रणाली की जटिलता को उसकी समग्रता में व्याख्यायित, परिभाषित एवं प्रतिक्रियान्वित करती है । वह आदमी और आदमी को जोडनेवाली एक समझ है, जिसके मूल में मानव-कल्याण की भावना है । समकालीनता का संबन्ध केवल वर्तमान से ही नहीं, बल्कि अतीत और भविष्य से भी है । उसमें वर्तमान बोध के साथ अतीत और भविष्य का विवेक-बोध भी निहित है । "समकालीनता मात्र वर्तमान का बोध नहीं बल्कि अतीत के तहत वर्तमान को गहराई में समझने और वर्तमान को बदलकर एक नये भविष्य को गढ़ना है ।"[2] किसी भी व्यक्ति केलिए समकालीनता को प्राप्त करना सरल बात नहीं है । युगीन सच्चाइयों की असली जानकारी इसकेलिए आवश्यक है । इसे प्राप्त करने केलिए व्यक्ति को अपने समय के साथ मुठभेड़ करते हुए, उसमें हस्तक्षेप

---

1. डॉ. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 12, 13
2. डॉ. जानवती अरोरा - समकालीन हिन्दी कहानी - यथार्थ के विविध आयाम, पृ. 1

करना है । वर्तमान समाज के अत्याचार, बर्बरों के खूनी आतंक शोषण आदि समस्याओं को समझकर उसे एक नई दिशा प्रदान करनी चाहिए । इस प्रकार काल के साथ-साथ जीने के बजाए अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला कर, रूढ़ियों के खिलाफ लड़ते हुए प्रगतिशील चेतना से सम्बद्ध रहना ही समकालीनता है । वह समाज की अनिश्चयात्मक स्थितियों को एक चुनौती के रूप में लेती है और उससे लडने केलिए वैचारिक आधार पर विरोध और विद्रोह का सहारा लेती है । यह विरोध या विद्रोही स्वर समकालीन साहित्यकारों में विद्यमान है । वे रचना को एक सामाजिक प्रक्रिया मानते हैं । समाज की विसंगतियों को वे सबसे पहले समझते हैं । वर्तमान जीवन की जटिलताओं को वे स्वयं भोगते हैं । समाज की इन समस्याओं की ओर जनता की दृष्टि लाना उसका कर्तव्य है । समस्याओं के प्रति या व्यवस्था के प्रति उनकी असहमति या विद्रोह हैं उनकी रचनाएँ । अपने समय की इन समस्याओं से उलझकर, उसके विरोध में रचना करना ही समकालीनता है । उनके सामने वर्तमान का संघर्ष, अतीत और भविष्य का सपना है । "समकालीनता अतीत के अनुभव के साथ वर्तमान के संघर्ष के सुखद संयोग का नाम है जिसके मूल में आस्था और सर्जनात्मकता है ।"[1]

---

1. डॉ. मोहन - सकालीन कविता की भूमिका, पृ. 7

मानव जीवन तथा सामाजिक स्थिति हमेशा बदलता रहता है । इस बदलती युगीन सच्चाइयों को नएपन के साथ प्रस्तुत करना ही रचनाकार का कर्तव्य है । अगर ऐसा नहीं हुआ, तो वह रचना समकालीनता की परिधि में नहीं आएगी । श्री ओमप्रकाश वात्मीकी के अनुसार- 'रचनाकार को अपने भावबोध में निरन्तर ताज़ा होते जाना है, जिसकेलिए जीवन के यथार्थ से उसका गहरा जुडाव ज़रूरी है । आत्म सजगता, समय की संवेदना और सरोकारों से रचनाकार यदि तटस्थ और निरपेक्ष रहता है तो निश्चय ही वह चाहे जितनी कलात्मक, शैली प्रगल्भ रचना करें, वह समकालीनता की परिधि से बाहर होकर अप्रांसगिक ही कही जाएगी ।"[1] अतः समकालीन होने केलिए अनिवार्य है अपने समय की सही पहचान एवं सार्थक प्रतिरोध । "तटस्थ होना सचमुच नपुंसक होना है पर समकालीन होने केलिए विद्रोही यानी कि प्रतिरोधी बनना ज़रूरी है।"[2]

समकालीनता समाजवादी दर्शन से जुड़ी हुई है । समाजवादी दर्शन भविष्य पर विश्वास रखता है और समकालीनता भी भविष्य पर विश्वास रखनेवाली एक मानसिकता है । इस प्रकार वह एक प्रकार से नव-प्रगतिशील दृष्टिकोण है जो किसी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समझ तथा गहरे जीवनानुभव की उपज है । "समकालीनता मानव भविष्य

---

1. ओमप्रकाश वात्मीकी - मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ. 163
2. डॉ. मोहन - समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 20

के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है । भविष्य के प्रति नियति के प्रति नही।"[1] परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ को रचनात्मक माध्यम से व्यक्त करनेवाला रचनाकार ही समकालीन है । इसलिए वह वर्तमान की भयावहता के सामने झुकने के बजाए, लडने केलिए तैयार होता है और भविष्य में अपनी कामना की पूर्ति देखता है । वह अपने को समसामयिक वस्तुस्थिति के स्वीकार तक सीमित रखने के बजाए, उसके परिवर्तन की आकांक्षा रखता है और इसकेलिए रचनात्मक सक्रियता का निर्वाह करता है । अर्थात समकालीनता एक गतिशील दृष्टिकोण है । "समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव, गतिहीनता और जड़ता को सहती और निर्ममता से तोड़नेवाली गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना हैं ।"[2]

वर्तमान समय का बोध ही समकालीनता का बोध है । यह वर्तमान-बोध, आधुनिकता बोध का अंग है । अतः समकालीनता आधुनिकता का ही विस्तृत रूप है ।

समकालीनता की परिस्थितियाँ

समकालीन साहित्य में समय के यथार्थ को दिखाया गया है । आज का समय नवउपनिवेशवाद, भूमण्डलीकरण व बाज़ारीकरण, सांप्रदायिकता, भ्रष्ट राजनीति, कई प्रकार के शोषण, सांस्कृति विघटन आदि समस्याओं से

1. सं. सुरेश शर्मा - रघुवीर सहाय रचनावली-3, पृ. 28
2. नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी का पहचान (भूमिका) पृ. 7

घेरा हुआ है । समकालीन साहित्यकार इनका प्रतिरोध ही अपनी रचनाओं के माध्यम से करने आ रहे हैं । इन भीषण समस्याओं पर आगे थोड़ा विचार-विमर्श किया जाएगा ।

नवउपनिवेशवाद

भारत समृद्धियों से भरा हुआ देश था । इन समृद्धियों को देखकर ही विदेशी शक्तियाँ जैसे डेच, पुर्तुगाली, फ्रान्सीसी, अंग्रेज़ी आदि ने उसे अपना निवास-स्थान बनाया था । तब व्यापार ही उनका एकमात्र लक्ष रहा था । लेकिन इन लोगों ने बाद में यहाँ अपना अधिकार जमा दिया । अपने राज्य को विस्तृत करने केलिए देशी राजाओं के बीच का झगड़ा ही इसका मुख्य कारण रहा । विदेशी लोगों ने इसका फायदा उठाया । उन लोगों ने यहाँ के शासन पर पहले कब्जा किया । बाद में उन लोगों ने यहाँ के कच्चे माल को अपने देश भेजकर, उन्हें पक्का माल बनाया और वापस उसे यहाँ लाकर व्यापार किया । हमारा देश छोटे-छोटे उपनिवेशों में बाँटा गया । धीरे-धीरे हमारी खेतीबारी भी उनके अधीन में हो गई और उनके इच्छानुसार होने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे भारत विदेशी ताकतों का अड्डा बन गया था । उपनिवेश के उस समय में शत्रू हमारे सामने मौजूद था । उन लोगों ने हमारी समस्त संपत्ति को लूट लिया था । भारत के स्वतंत्र होते ही यह परिस्थिति बदल गई । वे चले तो गए लेकिन उनका आतंक बना रहा, फर्क सिर्फ इतना ही है कि अब उनकी जगह अमरिका अप्रत्यक्ष रूप में हमें गुलाम बना रहा

है । सरल सी भाषा में यही नवउपनिवेशवाद है । "उपनिवेशवाद एक पर्वत की भाँति था परंतु नवउपनिवेशवाद किसी हिमशैल जैसा है जिसका सिरा ही केवल दिखता है और वह भी केवल मुट्ठी भर प्रज्ञावन लोगों को।"[1]

नवउपनिवेशीवादी शक्तियाँ अथवा उच्च साम्राज्यवादी शक्तियों ने आज भी हमें गुलाम बनाकर रखा है । इन शक्तियों ने नए-नए तरीकों से देश पर अपना कब्जा जमाकर रखा है । इनके द्वारा फैलाया गया एक भ्रम है 'विकास'। आर्थिक दृष्टि को लक्ष्य में रखते हुए ही 'विकास' के नाम पर सभी कार्यवाइयाँ चल रही हैं । इसके मानवीय पक्ष को बिलकुल अनदेखा कर दिया गया है । बाज़ार के ज़रिए इस विकास का भ्रम बहुत जल्द ही फैल गया है । नवउपनिवेशवाद का शोषण केन्द्र है बाज़ार। अमेरिका और सारे यूरोप ने अपने माल केलिए सारी दुनिया को बाज़ार बनाकर रख दिया है । इसकेलिए इन पूँजीवादी शक्तियों ने नए-नए तरीकों को अपना लिया है । ये लोग जनतांत्रिक समाज पर ही अपना कब्जा जमाते हैं । कई प्रकार की संधियों में हस्ताक्षर कराकर गरीब देशों की अर्थव्यवस्था को ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने अधीन कर लेती है । देश के सत्ताधारी द्वारा इनका समर्थन भी प्राप्त है । शोषण के उद्देश्य से किए गए इस गठबंधन को 'भूमंडलीकरण' अथवा 'वैश्वीकरण' का नाम दिया गया है ।

---

1. आलोचना - अंक - 12, जन-मार्च 2003, पृ. 150

वैश्वीकरण का वास्तविक लक्ष्य विश्व के गरीब देशों को आर्थिक एवं वैज्ञानिक सहारा देना और उन्हें विकास की ओर बढ़ाना ही था । इस कार्य केलिए ही अन्तार्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वबैंक और विश्वव्यापार संगठन का गठन हुआ था । लेकिन अमरिका जैसी पूँजीवादी शक्तियों के अधीन में आकार उनका लक्ष्य बिलकुल बदल गया और यह केवल अविकसित और विकासशील राष्ट्रों के ऊपर साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा अधिकार जमाने का एजंडा मात्र बन गया । "भूमंडलीकरण के नाम पर अब औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को संसार के उन भागों पर लादने का प्रयास हो रहा है जहाँ अभी तक पारंपरिक या गैर पूंजीवादी व्यवस्था थी ।"[1] अपने उपनिवेशवाद को बनाए रखने केलिए पूँजीवादी देशों ने विकास और आधुनिकीकरण जैसे मोहक शब्दों का नारा देकर गरीब देशों को अपने मायाजाल में फंसाने केलिए विश्वस्तर पर अनेक उपक्रम कर रखे हैं । विकसित और आधुनिक बनने की ललक में देशवासी स्वदेशी उत्पादों के स्थान पर विदेशी उत्पादों को खरीदकर आधुनिकता की दौड़ में आगे बढ़ना चाहते हैं । इसके अलावा विकास के नाम पर पूंजीवादी देश विकासशील देशों को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से भारी ऋण दिलाकर उन पर ब्याज का दुर्वह बोझ भी लाद देते हैं । इससे उभरने केलिए वे सदा केलिए उनके आर्थिक शिकंजे में फंसकर अपना आर्थिक शोषण

---

1. सच्चिदानंद सिंह - भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ. 13

कराते रहते हैं । आधुनिक बनने की ललक में अपने पर होते भारी आर्थिक शोषण को ये गरीब देश नज़र अन्दाज़ कर देते हैं ।

वर्तमान नवउपनिवेशवाद हमारी कृषि पर आधारित परंपरागत उत्पादन-प्रणालियों, जैविक विविधता, सांस्कृतिक विविधता, इन सबको समाप्त करने का उपक्रम-सा बन रहा है । भारत जैसे सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित देशों को इन साम्राज्यवादी शक्तियों ने तीसरी दुनिया का नाम देकर अविकसित या अल्पविकसित देशों के खाते में डाल रखा है । इससे उनका मकसद यह है कि विकसित होने की लालस में सहायता केलिए हम उनकी ओर देखते रहें। आधुनिक बनने केलिए विकासशील देश पश्चिम की तकनीक और तकनीशियनों को आयात करने केलिए लालयित हो जाते हैं । दूसरी ओर सारा देश बड़े देशों के उत्पादों का बाज़ार बन जाता है, परिणामस्वरूप पूँजीवादी देश भारी मुनाफा कमाते हैं । 'तथाकथित तीसरी दुनिया के विकासशील देशों में विकसित देशों से नयी प्रौद्योगिकी एवं सूचना-प्रणाली का जो प्रवाह हो रहा है, वह इस नये उपनिवेशवाद के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर रहा है।"[1]

नवउपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा संचालित विकास नीति के अन्य परिणाम हैं निजीकरण और उदारीकरण । इनके तहत एशिया, दक्षिण अमरिका, आफ्रिका आदि इन नयी साम्राज्यवादी ताकतों केलिए बाज़ार के

1. राष्ट्रभाषा सन्देश - 15 मई 2012, पृ. 7

रूप में परिणत हो रहे हैं । निजीकृत एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यहाँ के मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों को लूट रही है । अपने उत्पादनों की बिक्रि केलिए जनता की जीवन -प्रणाली एवं अभिरुचियों को भी बदल दिया जा रहा है । विज्ञापनों के ज़रिए वे जनता को आकृष्ट करते हैं । इसके पीछे की छल को समझे बिना इन बहुराष्ट्र कंपनियों और बैंकों से उदार रूप में धन ऋण लेकर जनता हमेशा केलिए उनके जंजाल में फंस भी जाते है । उदारीकरण के ज़रिए छोटे-छोटे देशों के उद्योग धन्धों को लुंज-पुंज कर यहाँ की अंर्थव्यवस्था पर पूँजीपति देश एकाधिकार स्थापित कर लेते है । "यह बडे देशों की आर्थिक उपनिवेशवादी चाल है जिसके छलावे में विवेकहीन छोटे देश आसानी से आ जाते है और अपनी अर्थव्यवस्था को उदारीकरण के नाम पर आसानी से नष्टभ्रष्ट कर बैठने हैं ।"[1]

भूमंडलीकरण

वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण वास्तव में विश्व के गरीब देशों को आर्थिक एवं वैज्ञानिक सहायता प्रदान कर इन्हें विकसित बनाने के लक्ष्य से प्रारंभ किया गया था । विश्व के विकसित राष्ट्रों ने मिलकर ही यह योजना बनाई थी । इसको दृष्टि में रखते हुए ही अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं का गठन हुआ था । इससे विश्व के हर गरीब और पिछडे देश को आगे आकर अपने उत्पादनों केलिए योग्य

1. मधुमती वर्ष - 39 अंक 1 जनवरी 1999, पृ. 6

मंडी चुनने तथा सबसे अधिक मुनाफा प्राप्त करने का अवसर मिलता था। इस प्रक्रिया में संपूर्ण विश्व सिमटकर एक इकाई बन जाता है और देश की सीमा को भूलकर अंतर्राष्ट्रीय निगमों से तथा बहुराष्ट्रीय निगमों से व्यापारिक तौर पर संबद्धता स्थापित करती है ।

लेकिन धीरे-धीरे यह साम्राज्यवादी शक्तियाँ विशेषकर अमेरिका जैसी विकसित शक्तियों के कब्जे में आ गया । इस प्रकार भूमंडलीकरण मूख्यतः पूँजीवाद के हित में बनाई गई एक अवधारणा और प्रक्रिया बन गई । आर्थिक लाभ ही इसका मुख्य लक्ष्य रहा । यह वस्तुतः अमेरीकीकरण है । अमेरीका अपनी नियति नीति को विकासशील देशों पर धोपकर इन देशों के गृह उद्योगों और छोटी-मोटी कंपनियों को लुंज-पुंज कर देता है जिंससे उसका व्यापार इन देशों में अबाध रूप से चलता रहे और देश उसका विरोध में कुछ न कहें । "यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूंजीवादी प्रतिष्ठानों यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके संकेद्रण के सबसे सबल केन्द्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है ।"[1]

भूमंडलीकरण की प्रेरक-प्रभावक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ है । यह सारी धरती को अपना बाज़ार मानती है और समस्त संसार को व्यापार की दृष्टि से देखती है । विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश आदि वित्तीय संस्थाओं के

---

1. सच्चिदानंद सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनैतियाँ, भूमिका

ज़रिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ने विकाशील देशों को अपने कब्जे में रखने का उपक्रम बनाया । भूमंजलीकरण की इस प्रक्रिया ने देशीय व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार का रूप बना दिया । इस खुली बाज़ार व्यवस्था एवं पूँजी के केन्द्रीकरण ने विकासशील देशों को विकसित देशों के सामने झुकने का मार्ग बना दिया । व्यापार से इनका तात्पर्य है सबसे सशक्त व्यापारिक प्रतिष्ठानों केलिए उन सारे क्षेत्रों को खोल देना जो अब तक इनकी पहूँच के बाहर था । भूमंडलीकरण के नाम पर औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था और उसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को संसार के उन भागों में लादने का प्रयास हुआ है जहाँ पारंपरिक या गैर पूँजीवादी व्यवस्थाएँ थीं ।

भारत में भूमंडलीकरण की शुरुआत 1991 के गाट्ट समझौता से माना जाता है । इस समझौते के बाद भारत में बहुराष्ट्र कंपनियों का अधिकार जम गया । इसने गाँव की जगह शहर और नागरिक की जगह उपभोक्ता की सत्ता को अंतिम तौर पर स्थापित कर दिया । उसने भारत के बड़े-बड़े नगरों को ही नहीं, गाँवों को भी अमेरिका में तब्दील कर दिया । यह संभव हुआ भारत के बाज़ारों पर अधिकार जमाकर । वैश्वीकरण ने सब कुछ को 'बाज़ार की चीज़' बना दिया है । वैश्वीकरण का आधार बाज़ारवाद है और बाज़ारवाद का आधार उपयोगिता है । आज उपयोगिता के आधार पर चीज़ों को नापा-तोला जाता है । इस मानसिकता ने एक प्रकार की उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है । इस ग्लोबल इकॉनामी में केवल

दो यथार्थ हैं एक बाज़ार और दूसरा उपभोक्ता । बाज़ार प्रबंधन और मीडिया की अन्तर्बद्धता से संपूर्ण समाज बाज़ार और वित्तीय पूँजी की आवश्यकता बन गई है । समाज को विस्थापित करते हुए बाज़ार, केन्द्र शक्ति बन गई है जिसने सब कुछ हाशिये पर ढ़केल दिया है । "भविष्य के प्रति भरोसे को तोड़ने वाला यह बाज़ारवाद प्रत्येक क्षण को आखिरी मानकर विज्ञापन, देह-प्रदर्शन, मनोरंजन के नाम पर अपसंस्कृति का प्रचार, व्यक्ति से अधिक वस्तु की महनीयता, उपभोक्तवाद का खुला प्रचार तथा प्रकारान्तर से साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति करने का माध्यम बना है आज का भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद।"[1]

वर्तमान भूमंडलीकरण ने हमारी भाषा, कृषि पर आधारित परम्परागत उत्पादन-प्रणालियाँ, जैविक-विविधता, सांस्कृतिक विविधता आदि सबको समाप्त कर दिया है । इस बाज़ारीकरण के माध्यम से एक प्रकार की विनाशकारी उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे जीवन में प्रवेश कर रही है जिसके परिणाम मानव समाज में आर्थिक विषमता का विस्तार हो रहा है । बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापन द्वारा भारत जैसे देशों की प्राकृतिक संसाधनों को लूटा जा रहा है । अपने उत्पादनों की खपत केलिए जनता की जीवन-प्रणाली और अभिरुचियों को बदल दिया जा रहा है जिसके कारण प्रकृति

1. डॉ. सुमन बिस्सा - मधुमती जनवरी 2007, महिला लेखखा की चुनौतियाँ, पृ. 111

तथा पर्यावरण का विनाश और हिंसा की संस्कृति का उत्तरेत्तर प्रसार होता जा रहा है । भूमंडलीकरण तथा बाज़ारीकरण द्वारा विकसित संस्कृति का आधार केवल धन है । किसी दूसरे से उसका संबन्ध नहीं है । "जीवन की महत्ता और मूल्यों को वस्तुओं की संख्या में बदल दे, जिससे ज़िन्दगी एक बाज़ार जैसी लगने लगी ।"[1]

सांप्रदायिकता

भारत की वर्तमान गंभीर समस्याओं में प्रमुख हैं सांप्रदायिकता की समस्या । बहुत पुराने समय से ही यह समस्या भारत में विद्यमान है । जाति, धर्म-पंथ आदि की संकीर्णता ही इस समस्या का प्रमुख कारण है । मानव कल्याण ही धर्म का लक्ष्य है । धर्म मनुष्य को सन्मार्ग की ओर ले जाती है। भक्ति के ज़रिए मनुष्य की पीड़ा और मुक्ति की आकांक्षा रहती है । लेकिन जब धर्म और भक्ति अपने वास्तविक लक्ष्य से फिसल जाती है तो सांप्रदायिकता जन्म लेती है । अर्थात संकीर्ण एवं सीमित मानसिकता का परिणाम है - सांप्रदायिकता । सांप्रदायिकता धर्म के सत्य पक्ष को नगण्य बनाकर स्वत्व पक्ष को प्रमुखता देती है, जिसमें समन्वयात्मकता की क्षमता नहीं है । फलस्वरूप यह संकुचितता और टकराहट को जन्म देती है । इस प्रकार व्यक्ति केलिए धर्म मुख्य तथा मनुष्य गौण बन जाता है ।

मुगल काल से ही सांप्रदायिकता का अंश भारत में मौजूद है ।

---

1. मधुमति, साहित्य और बाज़ार, जनवरी - फरवरी 2001, पृ. 47

आज़ादी के साथ के भारत विभाजन ने इसे और अधिक गहरा बना दिया । वर्तमान समाज में भी सांप्रदायिकता ज़ोरों पर है । सिख हत्याकाण्ड, बाबरी मस्ज़िद ध्वंस, गुजरात हत्याकाण्ड आदि इसकेलिए उदाहरण है । भारत की हिन्दू-मुसलमान एकता को खतरा मानकर ही ब्रिटीश शासकों ने विभाजन का कार्य किया । इसी प्रकार भारत में सांप्रदायिकता का आरंभ हुआ था । लेकिन आज-कल गूढ़ लक्ष्य को लेकर ही सांप्रदायिकता क्रियाशील है । सांप्रदायिक दंगे अकस्मात् नही होते । इसके पीछे धर्म की ओड़ लेकर धर्म का दुरुपयोग करनेवाले महत्वाकांक्षी लोग, संस्थाएँ अथवा सत्ताधारी ही सक्रिय होते हैं । "भारतीय समाज में सांप्रदायिकता पहले भी थी । स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान भी, लेकिन तब वह अपने अस्तित्व केलिए लड़ रही थी। अब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम से जो सांप्रदायिकता सामने थी वह लोगों के दिलों दिमाग के साथ-साथ इस देश के इतिहास, सभ्यता और सत्ता पर कब्जा करने केलिए सन्नद्ध थी ।"[1]

साँप्रदायिकता को मिटाने केलिए ही धर्म के आधार पर विभाजन किया गया था । लेकिन यह केवल एक राजनीतिक स्वार्थ रह गया । धर्म आज एक राजनीतिक सिक्का है । राजनीति से जुड़कर धर्म अपने क्षेत्र में हुए वैज्ञानिक सुधारों से बाहर निकल गया । राजनीतिक हस्तक्षेप ने उसे अपनी प्राचीन गौरवशाली परंपरा से बाहर निकालकर अंधविश्वासों एवं कट्टरवाद की दल-दल में डाल दिया । इसका लक्ष्य राजनैतिक लक्ष्य बन

1. डॉ. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, पृ. 166

गया । परिणामस्वरूप मनुष्य अपनी आत्मचेतना और कल्पनाशक्ति खोकर एक धार्मिक यंत्र बन गया । इसे बनाए रखना राजनीतिज्ञों केलिए आवश्यक है । अपनी कपटता को छिपाने केलिए ही राजनीतिज्ञ धर्म के ओढ़ में सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं । सांप्रदायिकता का संबन्ध धर्म से न होकर बल्कि लाभ से और राजनीति से है । सत्ता और वर्चस्व प्राप्त करने का एक प्रबल माध्यम है सांप्रदायिकता । इस प्रकार अधार्मिक उद्देश्य को पूरे करने केलिए धर्म का इस्तेमाल करना ही सांप्रदायिकता का लक्ष्य है ।

सांप्रदायिकता को आर्थिक एवं राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति का एक अमानवीय हथियार मान सकते हैं । इसके बढ़ते प्रभाव से ही फासीवाद का जन्म होता है । वह अंध राष्ट्रवाद के नकाब पहनकर खडा हो जाता है और आर्थिक शोषण का द्वार खोल देता है । सांप्रदायिकता का एक और भायवह संस्करण है आतंकवाद । आतंकवाद एक प्रकार के मानसिक पिछडेपन का परिणाम है । अधिकार चेतना से प्रेरित होकर सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा फैलाये जानेवाले बहशीपन को आतंकवाद कह सकते हैं जो मानसिक पिछडेपन से होता है । अपने लिए अलग क्षेत्र की माँग केलिए ये लोग हथियार उठाते हैं और अपने इस संकीर्ण हित को वे धार्मिता का नाम देते हैं जो वास्तव में राजनैतिक कार्यवाई ही है ।

समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

उपर्युक्त परिस्थितियों से उत्पन्न जो समस्यायें हैं, उनका प्रतिरोध

समकालीन कहानियों में दर्ज हैं । उपनिवेशवाद, भूमण्डलीकरण एवं सांप्रदायिकता का प्रतिरोध समकालीन हिन्दी कहानियों की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

नवउपनिवेशवाद वास्तव में सर्वहारा विरोधी अवस्था का जनक है । फिर भी इसके खिलाफ खुला प्रतिरोध आज भी मुखर नहीं है । इस माहौल में साहित्य का दायित्व और अधिक बढ़ गया है । समकालीन रचनाकार इन सबको दृष्टि में रखते हुए ही रचनाएँ कर रहे हैं । उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर', संजीव की 'ब्लैक होल', पंकज विष्ट की 'बच्चें गवाह नहीं हो सकते', संजय खाती की 'पिंडी साबुन', मृदुला गर्ग की 'कलि में सत' आदि नवउपनिवेशवादी माहौल को दर्शाते प्रमुख कहानियाँ हैं ।

आज के समाज में मनुष्य वस्तु में परिणित हो रही है । उसके जीवन में मूल्यों केलिए कोई स्थान नहीं हैं। एक और हमारे मूल्यों का विघटन हो रहा हैं तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी शक्तियाँ व्यापार के ज़रिए अपने सांम्राज्य की सीमा बढ़ा रही हैं । समकालीन रचनाकार एक ओर इन शक्तियों का विरोध कर रहे हैं तो दूसरी ओर समाज को जगा भी रहे हैं । समकालीन कहानियों में एस आई हरनोट की 'एम. डॉट. कॉम', स्वयं प्रकाश की 'ट्रैफिक', जयनन्दन की 'विश्व बाज़ार का ऊंट', उदय प्रकाश की 'वारेन हेसिटंस का सांड' आदि भूमंडलीकरण तथा बाज़ारीकरण की विभीषिका को दिखानेवाली कहानियाँ हैं ।

समकालीन भारतीय समाज धर्म, जाति, उपजाति, नस्ल जैसे संकीर्ण खानों में बँटता जा रहा है । इसके प्रत्यक्ष उत्तरदायी हमारे राजनीतिक एवं धार्मिक नेताओं की स्वार्थता ही हैं । सांप्रदायिकता के इस अमानवीय व्यवहारों के खिलाफ लिखी गई कहानियाँ हैं - स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है', 'पार्टीशन', पंकज विष्ट की 'जडायू', मुद्राराक्षस की 'जले मकान की कैदी', अजगर वजाहत की 'मुक्ति', पहचान', मुर्दाबाद' आदि ।

स्त्री विमर्श

प्राचीन समाज में स्त्रियों को बहुत सम्मान प्राप्त था । वैदिक काल में स्त्री को पुरुष के समान श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था । लेकिन जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया तथा समाज में नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था लागू होने लगी स्त्री का महत्व भी बदलते लगा । लोगों की मानसिकता में बदलाव आया और वे 'स्त्री को वस्तु' के रूप में देखने लगे। सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था ने स्त्री के वर्चस्व को खत्म किया और वह पूर्णतः पुरुष के अधीन में आ गई । "अतः मातृसत्तात्मक युग में नारी को जो दुर्गा, देवी, शक्ति आदि माना जाता था, व्यवहार में स्थिति उसके विपरीत ही रही । भूमि, पत्नियों तथा दासी-दासियों की संख्या को सामन्तों की प्रतिष्ठा का आधार माना जाता रहा । कभी देवदासी कभी नगरवधू, कभी

गणिका का उसका रूप इसका प्रमाण है कि पुरुष को नारी का कामिनी-रूप ही प्रिय रहा।"[1] सामाजिक जीवन में पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व नकारा जाने लगा तथा धीरे-धीरे उन्हें किसी की पुत्री, पत्नी अथवा माँ के रूप में ही देखे जाने लगे । इस प्रकार एक ओर वे स्त्री होने के नाते सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगी और दूसरी ओर अपनी जातीय स्थिति के कारण दोहरे अत्याचार, शोषण और अपमान का शिकार बनने लगीं ।

स्त्रियों केलिए उनकी सबसे बडी त्रासदी उनका 'स्त्री' होना ही है । नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था ने उनकी अस्तित्व को ऐसा बदल दिया कि उसे अपने आप को अन्यनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ मान लेना पडा । उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते दबाव ने उनकी पुरानी महत्ता को समाप्त कर दिया और नई बाज़ार व्यवस्था ने संबन्धों को नए ढ़ंग में देखने को प्रेरित कर दिया । विज्ञापनों के ज़रिए स्त्री, उपभोक्तावादी समाज और उसकी संस्कृति का हिस्सा बन गया । उस विशिष्ट सामाजिक वर्ग केलिए वह एक 'वस्तु' मात्र बन गई और उनका उपयोग करना उस समाज केलिए एक त्योहार मात्र रहा ।

इस परिस्थिति में समकालीन कहानिकारों ने स्त्री जीवन की त्रासदी को सूक्षमता और विविधता से व्यंजित करने का प्रयास किया । इस समय की कहानियों में स्त्री-जीवन की आधुनिक जटिलता, नारी की सामाजिक

1. डॉ. अशोक भाटिया समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ. 222

स्थिति, पुरुष की एकाधिकारी मानसिकता, विविध स्तरों पर जीवन-यापन कर रहे स्त्री-पुरुष संबन्धों, उनकी कुण्ठाओं, वर्जनाओं और परिवेश को कहानियों के ज़रिए समझाने तथा इसके खिलाफ प्रतिरोध करने का प्रयास किया गया। 'मृदुला गर्ग' की 'हरी-बिन्दी', 'रवीन्द्रनाथ ठाकूर' के 'स्त्री रेर पत्र', "औरतें' आदि इस श्रेणी की प्रमुख कहानियाँ है । कहानी के क्षेत्र में लेखिकाओं की एक लंबी कतार है । वे नारी विमर्श की कहानियाँ लिखती आ रहीं है । उनमें मुख्य हैं चित्रा मुद्गल, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजली श्री, अलका सरावगी, गीताश्री आदि ।

दलित विमर्श

'दलित शब्द का अर्थ है कुचला हुआ, रौंदा हुआ, जो दबाया गया हो या जिसे पनपने-बढ़ने न दिया गया हो । अंग्रेज़ी में इन्हें 'depressed class' कहते हैं । अर्थात् निम्न जाति और अस्पृश्यता के कारण जो जन अति गौण है, वे ही 'दलित' कहलाते हैं । प्रयोग की दृष्टि से 'दलित' शब्द के दो अर्थ है, व्यापक अर्थ में दलित शब्द की कोई विशेष जाति नहीं है । अर्थात् जाति को महत्व न देकर मनुष्य की पतितावस्था, दुरावस्था, लाचारी और शोषण को देखा जाता है । सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से जिसका शोषण होता है, स्वतंत्रता, समता और प्रगति से जो वंचित है, वही दलित है । संकुचित अर्थ में, यह शब्द जाति-भेद दिखाता है ।

हिन्दी में दलित साहित्य का आरंभ मराठी साहित्य से माना जाता है।

दलित-चेतना के साहित्य को लेकर दो प्रकार के विचार बने हुई हैं । एक वर्ग का मानना है कि दलितों द्वारा रचित साहित्य ही दलित साहित्य हो सकता है । दूसरे वर्ग का कथन है कि दलित पर लिखने केलिए दलित होने की आवश्यकता नहीं है । जो भी हो दलित साहित्य सदियों से अपमानित, प्रताड़ित एवं वंचित समुदाय की विशाल पीड़ा, व आक्रोश-विद्रोह का ही स्वर है ।

दलित साहित्य सामाजिक बदलाव लाने का आह्वान करता है । इसमें आक्रोश के साथ-साथ संवेदना और मानवीयता भी है । इस में न्याय की उत्कट लालसा के साथ-साथ समानता की तीव्र ललक भी है । रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से संगठित होकर गलीज, बर्बर परंपराओं या जमींदारी, साजिश के खिलाफ लड़ने का आह्वान करते है ।

समकालीन दलित कहानियों में कुसुम मेघवाल की 'आतंक', कुसुम वियोगी की 'अंत्तिम बयान', सुशील टाक भौरे की 'सिलिया', ओम प्रकाश वाल्मीकी की 'सपना', मोहनदास नैमिशराय की 'हारे हुए लोग', बी.एम. नायर की 'चतुरी चमार की चाड' आदि प्रमुख हैं ।

पारिस्थितिक विमर्श

समकालीन साहित्य ने, मनुष्य और प्रकृति के आपसी संबन्ध में जो परिवर्तन आया है, उसे बडी सजीवता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया

है । आधुनिक सभ्यता के विकास में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का बहुत बड़ा योगदान है । लेकिन इस विकास ने मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबन्ध को तोड़ दिया हैऔर मनुष्य द्वारा प्रकृति का निरन्तर शोषण हो रहा है । आधुनिकीकरण ने उसके संतुलन को तोड़ दिया है । इन सबको दृष्टि में रखते हुए, पारिस्थितिकी, समकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों में एक बनी । पारिस्थितिक चिन्तन ने जनता की प्रकृति के प्रति कर्तव्य और प्रतिबद्धता को बढ़ावा दिया । प्रकृति के खिलाफ होते अत्याचारों के प्रति प्रतिरोध का स्वर जताने का कार्य पारिस्थितिक चिन्तकों ने किया ।

पारिस्थितिक असन्तुलन वर्तमान पूँजीवादी विकास नीति से उत्पन्न एक संकट है । यह विकास नीति उपभोगवाद पर आधारित है । इस उपभोगवादी संस्कृति में मनुष्य को यह सिखाया जाता है कि किसी भी चीज़ को एक बार उपयोग करे और बाद में फेंक दिया जाए और नए को प्राप्त किया जाए । इस सुख भोग की संस्कृति ने प्रकृति की संतुलित अवस्था को नष्ट कर दिया है । बढते कारखानों, बाज़ारों आदि के कारण प्रदूषण बढ़ रहा है और प्रकृति का विनाश हो रहा है ।

समकालीन हिन्दी रचनाकारों ने परिवर्तित होते समाज को और इस समाज के कारण बदलते प्रकृति और पर्यावरण के नए रूप को भली-भांति जाँचा-परखा है । इन रचनाकारों ने पारिस्थितिक समस्याओं पर बल डालने के साथ-साथ प्रकृति के प्रति मनुष्य के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है ।

स्ववयंप्रकाश की 'बलि', राजेश जोशी की 'कपिल का पेड, पंखरी सिन्हा की 'तालाब हो या पोखर', कैलाश बनवासी की रोज़ का एक दिन', मृदुला गर्ग की 'इक्कीसवीं सदी का पेड' आदि कहानियों में हमें पारिस्थितिक सजगता की झलक देखने को मिलती है ।

राजनीतिक खोखलापन

आज राजनीति भ्रष्टाचार का पर्याय बन गया है । जिन शासकों को भारत की रक्षा करना चाहिए वे ही भारत के भक्षक बन गए है । पूरा देश राजनीति के अमानवीय प्रभाव से छाया हुआ है । प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सब इस अमानवीयता के शिकार बने हुए है । अधिकारलिप्सा ही इसका प्रमुख कारण है ।अंग्रेज़ों के जाने पश्चात, सत्ता तो परिवर्तित हो गया है किन्तु व्यवस्था अब भी वही है । अधिकार प्राप्ति के लालच में आज के राजनीतिज्ञ अंधे हो गए है । वर्तमान राजनीति ने समाज के प्रत्येक पक्ष को न केवल प्रभावित किया है, बल्कि प्रदूषित भी किया है ।

आज की राजनीति में शरीफ और गुण्टे का अंतर मिट गया है । राजनीतिज्ञ जनसेवा की आड़ लेकर ऐश करना चाहते हैं । इसके लिए वे जनता के शोषण किसी भी हद तक करने को तैयार हैं । रिश्वतखोरी भाई-भतीजावाद, कोटे-परमिट का दुरुपयोग आदि वर्तमान राजनीतिक परिवेश को प्रदूषित करती हुई अन्य कडियाँ हैं । राजनीतिक हस्तक्षेप व्यक्ति को समाज से अलग खड़ा कर देता है । समाज से अलग होकर वह समाज

विरोधी बन जाता है जिन्हें हैं आजकल के नेता लोग अच्छा उपयोग कर रहे है । इसका उत्तम उदाहरण है छात्रों का राजनीति में इस्तेमाल होना । राजनीतिज्ञ छात्रों को अपने हित हेतु व विरोधियों के विरुद्ध प्रायः इस्तेमाल करते हैं । इसी कारण प्रत्येक राजनीतिक दलों की एक-एक छात्र इकाई नियमित रूप से सक्रिय रहती है । उन्हें जब हिसा केलिए प्रयोग में लाया जाता हैं तब उनमें अनुशासनहीनता आ जाता है ।

देश की सत्ता के शिखर पर बैठे लोग जब तक ईमानदार, चरित्रवान, देशभक्त तथा आदर्श स्थापित करनेवाले नहीं बनते तब तक देश का प्रगति होना संभव नहीं है । सभी समस्याओं की जड़ में इन्हीं मूल तत्वों के अभाव हैं जिनके कारण देश विदेशी शक्तियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में है । व्यक्तिगत स्वार्थों के चलते अधिकतर राजनीतिक लोग अपनी कुर्सी के प्रभाव से अधिकतम आर्थिक लाभ कमा लेना ही चाहते हैं । वास्तव में यहाँ के बाज़ारीकृत-वैश्वीकृत नव औपनिवेशिक माहोल के पीछे भ्रष्ट राजनीति ही है ।

राजनेताओं के भ्रष्ट तथा निरंकुश आचरण को समकालीन हिन्दी कहानी में विविध रूप से व्यक्त किया है । हमारी प्रशासन व्यवस्था, राजनीति के पतनशील हो जाने के कारण भ्रष्टाचार में डूबा हुआ है । इस भ्रष्टाचार को समकालीन कहानियों में व्यापकता और विविधता के साथ उभारा गया

है । "सामाजिक चिन्ता-धारा में समकालीन कहानीकार का सबसे बडा सरोकार देश की राजनीति और प्रशासनिक दिशाहीन स्थितियों को लेकर रहा है । देश के राजनीतिक कर्णधारों ने किस प्रकार अपने लिए सुविधाभोगी स्थितियाँ बनाकर सामान्य जन को हर प्रकार की सुख-सुविधा से वंचित रखकर चिर अभाव की स्थितियों में ला खड़ा किया और प्रशासन-तन्त्र ने आम आदमी का जीवन दुर्बल भार बनाकर रख दिया, इसे कहानी में सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है । राजनीति की मूल्यहीन स्थिति ही आज युगधर्म बन गयी है, भ्रष्टाचार को सार्वजनिक स्तर पर मान्यता और रुतबा मिला है । फलतः आज की कहानी में विक्षोभ का यह स्वर बहुत प्रखर और प्रमुख रूप में आया है ।"[1]

समकालीन कहानियों में अंजना रंजन दाग की 'मुआवजा', गिरिराज किशोर की 'समागम', अब्दुल बिस्मिल्लाह' की 'दूसरे मोर्चे पर', 'मुद्राराक्षस', के 'दाँत या नाखून या पत्थर', असगर वजाहत की 'मछलियाँ' आदि इस श्रेणी की प्रमुख कहानियाँ हैं ।

उपभोग संस्कृति

किसी भी देश या जाति के संस्कारों का पूञ्जीभूत रूप संस्कृति कहलाती है । देशों और जातियों की अनेकता के कारण संस्कृतियाँ भी अनेक होती है । संस्कृतियों की अनेकता से भी कतिपय मूल तत्व एक ही

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह गगनांचनल अंक 1-2 जनवरी-जून 1999, पृ. 31

होता है । वह तत्व समस्त मानव जाति की संस्कृति को स्वरूप प्रदान करता है । वह जीवन की पूर्ण इकाई है, उसमें हमारा सोचना, हमारा रचनाकर्म, हमारी धर्म चेतना, हमारी कला चेतना, हमारी साहित्य चेतना, रहन-सहन का ढ़ग इत्यादि सब कुछ समाहित है ।

संस्कृति समाज की देन है । वह अनेक विचारधाराओं, विश्वासों और ऐतिहासिक अनुभवों से बनी हुई है । इसलिए सांस्कृतिक विघटन सामाजिक विघटन से भिन्न नहीं है । वर्तमान समय में संस्कृति का नाश होता जा रहा है । इसका मुख्य कारण है उपभोक्तावादी संस्कृति अथवा पाश्चात्य संस्कृति का पनपना । आज का युग उपभोक्तावादी युग है । यह युग अर्थ और अर्थ द्वारा प्राप्त सुख-सुविधाओं को महत्व देता है । इसके फलस्वरूप सहजतः सनातन सांस्कृतिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्य हाशिये पर धकेल दिये गये है । भूमण्डलीकरण की प्रवृत्ति ने वर्तमान युग को गहरा आघात पहूँचाया है । वह उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है । हमारी सांस्कृतिक विघटन के पीछे साम्राज्यवादी शक्तियों का ही हाथ है । उत्तराधुनिकतावाद के नाम पर एक विशेष मनस्थिति एवं परिस्थिति का प्रचार हो रहा है जो व्यक्ति को अपनी वैचारिकता से अलग करके उसे पाश्चात्य संस्कृति का गुलाम बना रहा है । उत्तराधुनिकतावाद से जन्मी उपभोक्तावादी संस्कृति शुद्ध उपयोगितावाद पर आधारित है । आज व्यक्ति अनजाने ही उस संस्कृति की ओर आकृष्ट है । "आज का भारतीय मानस उपभोक्ता संस्कृति

का समाज हो गया है । इससे हमारा मनुष्य समाज में एक वस्तु के रूप में बदल चुका है ।"[1]

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सभी वस्तुओं में सुख का संधान करता है । इसी कारण वह वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में अधिकाधिक स्वार्थी, सुखलोलुप और आत्मकेन्द्रित बन गया है । विज्ञान की प्रगति ने कई ऐसी चीज़ों का निर्माण किया है जो मनुष्य की सुख-सुविधाएँ बढ़ाती हैं । वह न चाहकर भी उस संस्कृति की ओर आकृष्ट हो रहा है जो उसे उपभोग का सुख प्रदान करता है । अर्थात एक प्रकार की अर्थप्रधान संस्कृति का विकास हो रहा है जहाँ प्रेम, आदर और विश्व-बंधुत्व की भावना बिल्कुल गायब है। वह सिर्फ भोगने में तत्पर है ।

डॉ. एन मोहनन के शब्दों में उपभोग से तात्पर्य है - "खाया-पचाया, मन भर गया तो फेंक दिया अथवा निकाल दिया गया । उसी तरह उपर्युक्त सभी चीज़ों का तब तक उपभोग किया जाता है जब तक वह लोगों को रुचिकर लगती है । जो हिस्सा उन्हें पसन्द नहीं आया अथवा अपनी सुविधा के अनुसार नही रहा तो तुरन्त उनमें परिवर्तन कर लिए जाते है ।"[2] इसके फलस्वरूप परिवारों में एक प्रकार की यांत्रिक सभ्यता का विकास हो गया

---

1. त्रिभुवननाथ शुक्ल, साक्षात्कार मार्च 2005, पृ. 75
2. डॉ. एन. मोहननः समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 28

है । इस मशीनी सभ्यता के आने से परिवार बिखर गया है । और आपसी संबन्धों में दरार आ गया है ।

किसी भी समाज में परिवार की एक विशिष्ट स्थिति एवं महत्व रहा है । परिवार के बिना समाज की कल्पना व्यर्थ है । लेकिन वर्तमान उपभोक्तावादी समय में इस परिवार रूपी संस्था में विघटन के बीज उत्तरोत्तर विकसित हो रहे हैं । पारिवारिक विघटन से तात्पर्य केवल पति-पत्नी के संबन्धों में तनाव ही नहीं बल्कि माता-पिता और बच्चों के संबन्धों में तनाव से भी है ।

मृदुला गर्ग की 'लौटना और लौटना', कृष्णा अग्निहोत्री की 'अपने-अपने कुरुक्षेत्र', उषा महाजन की 'एंटीक', ऊर्मिला शिरीष की 'चीख', हृदयेश की 'माँ' आदि कहानियों में उपभोग संस्कृति के दुष्परिणाम हमें देखने को मिलती है ।

वर्तमान समाज की सबसे प्रमुख एवं जटिल समस्या है वृद्धजनों की समस्या । आधुनिक समाज की 'use ad throw' संस्कृति ने आपसी संबन्धों को भी तोड़ कर रख दिया है जिसके कारण आज की युव पीढ़ी वृद्ध मा-बाप को एक अनुपयोगी एवं बोझ की तरह समझती है । बढ़ते औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के समसामयिक झुकाव के कारण, लोगों का ग्रामों से शहरों

में स्थानांतरण तथा शहरी बस्तियों की वृद्धि ने वृद्धों की सामाजिक अवस्था में परिवर्तन ला दिया है । भौतिक लाभ की इच्छा ने युवा सदस्यों को शहरी अंचलों में खींच लिया है जिसके कारण उन्हें परिवार के प्रौंढ सदस्यों से विलग होना पडता है ।

आधुनिक समाज की सबसे प्रमुख परन्तु इस अनदेखी समस्या का विश्लेषण आगे के अध्यायों में किया जाएगा ।

❖ ❖ ❖

दूसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध जीवन की शिथिलताएँ

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध-जीवन की शिथिलताएँ

एक व्यक्ति के जीवन काल को हम तीन अवस्थाओं में बाँट सकते हैं - शैशवावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था । पहले की दोनों अवस्थाओं की अपेक्षा वृद्धावस्था ऊर्जाविहीन और अधिक समस्याजनक होती हैं । 'एनसाइक्लोपीडिया ओफ ब्रिटानिका के अनुसार 'Old age also called senescence, in human beings, the final stage of the normal life span.' अर्थात- 'बूढापा, जिसे वार्धक्य भी कहा जाता हैं, मानव के सामान्य जीवन काल का अंतिम पड़ाव है । इसे हम अपने जीवन के अन्तिम सच का आखिरी पायदान कह सकते हैं । वार्धक्य में पहुँचते ही मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएँ कमज़ोर होने लगती है । स्वाति तिवारी ने अपनी पुस्तक अकेले होते लोग में वृद्धावस्था के बारे में यों कहा है - 'वृद्धावस्था को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया हैं जिसे सम्पूर्ण शारीरिक क्षमताओं में उत्तरोत्तर कमी से आँका जाता है।"[1] कहने का मतलब है कि इस अवस्था में व्यक्ति के जीवन में एक ठहराव आ जाता है।

सामान्यतया वृद्धावस्था को कोई स्वागत करना नहीं चाहता है यद्यपि यह मानव जीवन की अनिवार्य अवस्था है । इसे एक अभिशाप ही माना जाता हैं । इसका प्रमुख कारण है सामाजिक दृष्टिकोण और खुद वृद्धों का मानसिक संघर्ष । आधुनिक समाज ने एक उपभोगवादी दृष्टिकोण को अपना

1. स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, पृ. 31

रखा है । जो चीज़ उसके उपयोग की है उसे वह अपनाता है और बाकी को सिर्फ व्यर्थ मनता है । संबन्धों के बीच भी आज यही मानसिकता आ गई है। उपयोगिता के मुताबिक ही रिश्तों को भी आँका जाता है । इसी कारण घर पर व्यर्थ बैठे वृद्धजन आजकल नई पीढ़ी के लिए एक समस्या अथवा बोझ बन गए है । जब तक नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के प्रति इस सोच को नहीं बदलती यह समस्या बनी रहेगी ।

लेकिन नई पीढ़ी के साथ पुरानी पीढ़ी को भी अपने दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता है । क्योंकि वार्धक्य की ओर बढ़ने का असर सबसे अधिक खुद वृद्धों पर ही पडता है । अपने जीवन में आते बदलाव को कभी-कभी वे खुद ही नहीं अपना पाते । बूढापे में व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से कमज़ोर हो जाता है और इन समस्याओं से निपटने केलिए इन कमज़ोरियों को समझना आवश्यक है ।

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के विभिन्न पात्रों के ज़रिए वृद्धावस्था की इन समस्याओं को हमारे सामने उभारने का प्रयास किया है । वार्धक्य की इन कमज़ोरियों की ओर पाठकों का ध्यान लाने के साथ-साथ वृद्ध जनों को समझाना भी उनका लक्ष्य रहा है कि बूढ़ापे की ये शिथिलताएँ बिल्कुल स्वाभाविक हैं । अक्सर व्यक्ति में जब शारीरिक और आर्थिक कमज़ोरियों आ जाती हैं तो वह मानसिक रूप से भी कमज़ोर पड जाता है।

इसीलिए वार्धक्य की इन समस्याओं को समझना और उनपर काबू पाना अनिवार्य है ।

शारीरिक शिथिलताएँ

वृद्धावस्था तक आते-आते मनुष्य की शारीरिक स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन आ जाता है । उम्र के बढने के साथ-साथ हमारे शरीर की कार्यक्षमता भी घटने लगती है । शरीर की माँसपेशियाँ रक्तप्रवाह, श्वास प्रक्रिया, हड्डियाँ आदि दुर्बल बनने लगता है । माँसपेशियों में कमज़ोरी आ जाने के कारण जल्दी ही थकावट आ जाती है । जोडों के दर्द के कारण चलना-फिरना मुश्किल बन जाता है । सुनील कौशिश की कहानी 'पराजित' के बाबू जगमोहन लाल पैर की पिंडलियों के दर्द से परेशान है । उनकेलिए थोडा सा भी चलना कठिन है । उनके दर्द को व्यक्त करते हुए लेखक कहते हैं- "पैर की पिंडलियों का दर्द बढ़ता ही जा रहा है और साँस बार-बार फूलने-सी लगती है ।"[1] इसी प्रकार राजी सेठ की कहानी 'उतनी दूर' की अम्मा घुटनों के दर्द से पीडित है । "घुटने संभालते कोहनी पर भार साधते इन्हें खींच निकालने का उपक्रम किया तो कमर कमान-सी अधबीच अटकी रह गई । कितना भी रोए पीटे... उस मुद्रा से वापिस का लोच कहाँ से आएगा । हड्डियाँ पुरानी पट चुकी।"[2] इन उदाहरणों से हमें मालूम होता है कि जोड़ों का दर्द अथवा घुटनों का दर्द वार्धक्य की बहुत बडी समस्या है ।

1. गिरिराज शरण, पराजित, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 122
2. राजी सेठ, उतनी दूर, वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 30

नींद की कमी

वृद्धावस्था में नींद बहुत कम आती है । वृद्ध जन अक्सर रात भर जागते रहते हैं । शारीरिक पीडाएँ एवं मानसिक अस्वास्थ्य ही इसका कारण होती हैं । ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' के पिताजी रात भर जागते रहते हैं और कुछ न कुछ करते रहते हैं । कभी वे बिल्ली को भगाते तो कभी हवा से गिरे आम उठाने भागते हैं । कभी बिस्तर पर पडे ही करवटें लेते रहते हैं। कहानीकार कहते हैं - "पिता ने कई बार करवट बदली । फिर शायद चैन की उम्मीद में पाटी पर बैठ पंखा झुलने लगे है ।"[1] वृद्ध जनों का इस तरह से जागे रहना अक्सर घर के अन्य सदस्यों पर भी असर करता है जिसके कारण उनकी नींद भी नष्ट हो जाती है । यह एक समस्या खडी कर देती है । बूढ़ों की तक्लीफों को समझे बिना परिवारवाले उन्हें कोसने लगते हैं । निर्मला सिंह की कहानी 'प्यासी रेत' की मौसी शारीरिक रूप से बहुत दुर्बल है । उसे बहुत तकलीफ है । इसी कारण वह हर वक्त किसी न किसी को बुलाती रहती है । मौसी की इस आदत से तंग आकर उसकी बहू कहती है - "अम्मा, क्या बात है? हमेशा खड़खड़ करती रहती है । चुप भी रहा कर- सबको अपने-अपने काम है-कहाँ तक बार-बार आएँगे तेरे पास । आरे, कोई खाली थोड़ी ही बैठा है ।"[2] इसी कारण कभी-कभी वृद्धजनों को नींद की गोलियाँ भी अधिक मात्रा में खिलायी जाती हैं ताकि इन लोगों की वजह से अधिक परेशानियाँ नहीं बने ।

---

1. गिरिराज शरण, पिता, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 44
2. निर्मला सिंह, प्यासी रेत, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 119

स्वाद नष्ट होना

बूढ़ापे में स्वाद नष्ट होना स्वाभाविक है । मूंह के स्वाद में परिवर्तन आने के कारण ही कुछ खाना स्वादिष्ट नहीं लगने लगता । दवाइयों का अधिक मात्रा में लेना भी इसका एक कारण बनता है । लेकिन वार्धक्य में खाने की चाह बहुत अधिक रहती है । अक्सर 'कोलस्ट्रोल, डायबेटिक, प्रेषर' जैसी बीमारियों के कारण वृद्धों को मीठा, नमकीन या तेल में तले आहार निषिद्ध होते हैं और इन्हें खाना ही उन्हें अधिक पसंद होता है । जब ऐसे आहार उन्हें नहीं दिया जाता अथवा खाने से रोका जाता है तो यह उनमें एक प्रकार की निराशा पैदा कर देता है । मृणाल पाण्डे की कहानी 'चिमगादड़ें' की ममा बिल्कुल रोग ग्रस्त है । कई सालों से वह बिस्तर पर ही पडी है । ममा को किसी भी खाने का स्वाद अच्छा नहीं लगता । वह कहती है - "मूँह का स्वाद जाने कैसे हो गया है ।"[1] रोगग्रस्त होने के कारण ही उन्हें कम खाना और चुने-चुने खाना ही दिया जाता है जिसके कारण ममा को खुद अपनी बेटियों से ही घृणा हो जाती है और ज़िन्दगी से ऊब जाती है ।

आँखों का धुंधलापन

अधिकतर वृद्धजनों को बूढ़ापे में आँखों की रोशनी धुंधली हो जाती है । आँखें देखने में कमज़ोर हो जाती हैं । अक्सर बडी उम्र में मोतियाबिंद, या कांचबिंद जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं, इसका कारण आँखों के लैंस का

1. मृणाल पाण्डे, चिंगादडे, यानी कि एक बात थी, पृ. 17

कठोर हो जाता है । उसी प्रकार आँखों की अँधेरे के प्रति अनुकूलन क्षमता भी कम हो जाती है । श्रीलाल शुक्त की कहानी 'इस उम्र में' के बूढ़े को बिल्कुल दिखाई नहीं देता । वह चश्मा लगाकर भी ऐंडे-बैंड चलता है । वह लेखक से कहता है - "पता नहीं । मैं देख नहीं सकता था । मेरा चश्मा खो गया है ।"[1] उन्हें लेखक सिर्फ धब्बे जैसे ही दिख रहे थे । आँखों के कम दिखने के कारण ही अक्सर बूढ़ें लोग मुसीबत में पड जाते हैं । यहाँ कहानी का बूढ़ा भी देख न पाने के कारण किसी टेम्पो से धक्का मारा जाता है और बाल-बाल बच जाता है । राजी सेठ की 'उतनी दूर' कहानी की अम्मा को पढ़ने में बहुत दिक्कत है । "कागज आँख के निकट से निकट ले जाने में बरौनियों से भिड़ने लगता है पर कुछ दिखाई नहीं देता।"[2] इसी कारण उसे हर काम के लिए दूसरों का सहारा लेना पडता है । इसी वजह से घर के सारे लोग उनसे आँख चुराते हैं क्योंकि अम्मा को सहारा देना तो उनकेलिए मुसीबत से हटकर नहीं है । इसी प्रकार 'सौगात' कहानी का 'बाबूजी' और दिनेश पालीवाल की 'तकलीफ' कहानी के प्रोफेसर भी मोतियाबिंद की बीमारी के शिकार हैं ।

थकावट महसूस होना

वृद्धजनों केलिए थोडी दूर चलना या थोडा सा काम करना भी कठिन कार्य बन जाता है । श्वास प्रक्रिया में धीमापन आ जाना ही इसका कारण है।

---

1. (सं) गिरिराज शरण, इस उम्र में, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 24
2. (सं) गिरिराज शरण उतनी दूर, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 30

इसी वजह से उठने-बैठने और चलने-फिरने में कठिनाई होने लगती है । मदन मोहन की कहानी 'बूढ़ा' के बूढ़ा बाप रोज़ पार्क में टहलने जाता है । उनका एकमात्र खुशी इसी में है । लेकिन वार्धक्य के लक्षणों के कारण अब यह भी उनकेलिए मुश्किल पड रहा है । उन्हें चलने और घूमने-फिरने में अब दिक्कत होने लगी है । "छडी उठायी, और उसके सहारे चलने को हुआ तो पैर कांप गये । घुटनों में पीर उठी । हताश हो बैठ गया।"[1] कभी-कभी ऐसी परेशानियों के कारण ही अधिकतर बूढ़ों को घर की चार दीवारी के अन्दर ही बन्द रहना पडता है । वे चाहकर भी बाहर निकलने में असमर्थ रह जाते हैं ।

झुर्रियों का पडना

बूढापे का असर सबसे पहले त्वचा पर पडता है । त्वचा में स्निग्धता की कमी एवं रूखापन आ जाता है । त्वचा के नीचे वसा की कमी के कारण और त्वचा के लचीलापन के कारण झुर्रियाँ उभरने लगती है । इससे शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । उसी प्रकार बाल झड़ने और सफेद होने लगते हैं। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी 'बासंफल' की दादी के ज़रिए इन समस्याओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । वे कहती हैं - "सन जैसे पके सफेद बाल, झुर्रियों से भरा चेहरा, झुके कंधों के बोझ तले दोहरी होती जा रही कमर।"[2] उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' की बूढ़ी भी इन लक्षणों

1. मदन मोहन, बूढ़ा, नई धारा, अप्रैल मई, 2010, पृ. 104
2. मृदुला गर्ग, बासफल, संगति - विसंगति, पृ. 425

से युक्त है - "दादी किसी बूढ़े गिद्ध की तरह दिखाई देती, जिसके सिर और गर्दन के सारे रोएँ झड जाते है और एक पतली, बीमार, झुर्रियों भरी गर्दन और नंगी खोपड़ी वहाँ बचती है।"[1] सौन्दर्य का नष्ट होना एक प्रमुख समस्या है क्योंकि व्यक्ति जब बदसूरत से जाता है तो उसे कोई नहीं चाहता है । कभी-कभी तो उन्हें दूसरों के सामने लाने केलिए भी घरवाले हिचकते हैं ।

यादाश खोना

वृद्धावस्था अपना सबसे गहरा असर मनोवैज्ञानिक लक्षण के रूप में दिखाती है । यह लक्षण यादाश खोने के रूप में ज्ञात होता है । इसी कारण बूढ़ें लोग एक ही बात कई बार दुहराते रहते हैं और एक ही सवाल कई बार करते रहते हैं । स्मरण शक्ति कमज़ोर होने के कारण ही किसी बात का प्रत्युत्तर देने में वे समय लगा लेते हैं । कुछ बातें उन्हें याद रहती हैं कुछ बातें वे बिल्कुल भूल जाते हैं । अक्सर यही होता है कि अतीत की अथवा बचपन की बातें उन्हें बहुत याद रहती हैं और शेष की बातें वे भूल जाते हैं । यादाश खो बैठने का अच्छा उदाहरण मिलता है "इस उम्र में' कहानी में । कहानी के बूढ़ा बाप एक टेम्पो से धक्का खाता है और घायल हो जाता है । लेखक उसे अस्पताल ले जाकर पट्टी लगाता है । लेकिन हफ्तों बाद जब उनकी मुलाकात होती है तो बूढ़े को दुर्घटना के बारे में कुछ भी याद नहीं रहती वह सिर्फ सर लटकाए खडा रहता है और कहता है - "नर्स बहुत अच्छी थी ।

1. उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ और अन्य कहानियाँ, पृ. 53

उसने मुझे चाय पिलाई थी। ''लेखक सोचता है - "यानी, इसे दुर्घटना, बेहोशी, पुलिस, इमर्जेसी, कुछ भी याद नहीं । याद है तो सिर्फ नर्स की।"[1] व्यक्ति में श्रम-शक्ति और प्रतिक्रिया का अभाव हो जाने के कारण ही वह भुलक्कड़ बन जाता । अक्सर बूढ़ों के इस भुलक्कड़ स्वभाव के कारण घर के अन्य सदस्यों को भी कई कठिनाइयों आ जाती हैं । हाल ही में अखबार में एक समाचार निकला था कि एक बूढ़ा अपने घर का रास्ता भूल गया और भटक गया । घरवाले उन्हें दिन भर ढूँढते रहे और रात को जाकर उनकी खबर मिली । इन्हीं कारणों से अधिकतर बूढों को घर से बाहर ही नहीं निकाला जाता ।

उपर्युक्त कहानियों के अलावा उर्मिला शिरीष की 'बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु", रूपलाल बेदिया की 'पीले पत्ते' जगदीश नारायण चौबे की 'दादी का कम्बल' गोविन्द मिश्र की 'साधें', आदि कहानियों के वृद्ध पात्र भी कई प्रकार की शारीरिक समस्याओं से परेशान हैं ।

वृद्धावस्था में इन शारीरिक विकारों पर काबू पाना आवश्यक है । यदि आहार और व्यायाम पर कुछ ध्यान दिया जाए तो, इन कमज़ोरियों को हम कुछ हद तक दूर रख सकते हैं । वृद्धावस्था में माँस-मछली तथा तली हुई वस्तुओं के सेवन के बजाए फल, हरी सब्जियाँ तथा हल्का, खनिजों युक्त आहार का सेवन करना चाहिए । शारीरिक श्रम कम होने के कारण शरीर

1. (सं) गिरिराज शरण, इस उम्र में, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 24

द्वारा ऊर्जा की खपत की मात्रा घट जाती है, इसीलिए आहार की मात्रा भी घटा देनी चाहिए । एक समय पर पूरा भोजन लेने के बजाय दिन में कई बार थोड़ा-थोडा भोजन लेना ही अनिवार्य रहेगा । ठोस आहारों के बजाय दूध, फलों का रस आदि लेने से पाचन क्रिया बेहतर रहेगी । शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए वृद्धों को व्यायाम की भी आवश्यकता है । अपनी क्षमता और शारीरिक शक्ति के अनुसार वृद्धों को हलका व्यायाम, पैदल चलना, कम भाग दौड वाले खेल, आदि में भाग लेना चाहिए जिससे बुढ़ापे के रोग से एक हद तक मुक्त रह सकते हैं ।

आर्थिक शिथिलताएं

वृद्धावस्था में व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में बहुत बदलाव आ जाता है । नौकरी से अवकाश प्राप्त हो जाने पर अथवा शारीरिक श्रम की क्षमता में ह्रास आ जाने के कारण व्यक्ति की आय घट जाती है । इसके कारण बूढों को आर्थिक तंगी का सामना करना पडता है । परिवार के दायित्वों को निभाने केलिए वे अक्षम रह जाते हैं और वे अपने समुचित आहार और दवा-दारु अथवा अन्य ज़रूरतों के लिए दूसरों पर निर्भर हो जाते हैं । यह उनमें निराशा और कुंठा का भाव उत्पन्न कर देता है । बढ़ते हुए उपभोक्तावाद के कारण आजकल व्यक्ति की आयू नहीं बल्कि आर्थिक समर्थता और उपयोगिता ही देखी जाती है । इसी कारण परिवार के अन्य सदस्य भी उनको उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते हैं । समाज में भी ऐसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा घट

जाती है । एक ओर जहाँ उन्हें इन समस्याओं का सामना करना पडता है वहीं दूसरी ओर वृद्ध लोगों की इच्छाओं, तृष्णाओं आदि में भी बढ़ोतरी होने लगती है । ऐसी स्थिति में जीवन में असामंजस्य और समरसता का अभाव होने लगता है । अपनी इच्छाओं के निराकरण करने में जब वे या अन्य असमर्थ हो जाते हैं, तो उनकी आर्थिक समस्याएँ उनकेलिए एक अभिशाप प्रतीत होने लगती है ।

बूढ़ों की आर्थिक समस्या को लेकर समकालीन कहानियों में कई प्रश्न उठाए गए हैं । जैसा कि हमने पहले भी कहा कि अवकाश प्राप्त होने के साथ-साथ आय भी कम होने लगती है और दूसरों पर आश्रय लेना पडता है । अपनी मर्जी के मुताबिक कुछ भी करने केलिए उनके पास ना ही पैसा रहता है और ना ही अधिकार। अपने बच्चों के आश्रय में रहने के कारण ही उन्हें हर चीज़ केलिए उनका आश्रय लेना पडता है । नरेन्द्र कोहली की कहानी 'शटल' के ईश्वरदास अवकाश प्राप्त हो चुका है । अब घर केलिए उनकी कुछ भी कमाई नहीं रही थी । तो बच्चों ने माँ-बाप को एक दूसरे में बाँट लिया । ताकि किसी एक को ही दोनों का खर्च न उठाना पडे । अब बाप एक बेटे के साथ रहता है और माँ दूसरे बेटे के साथ । हफ्तों बीत जाती है तो ईशरदास को अपनी पत्नी से मिलने की चाह होती है और वह निकल पडता है । रास्ते में वह चाहकर भी अपने पोतों केलिए कुछ नहीं ले पाता क्योंकि उनके पास पैसे नहीं होते । उनके हाथ का थैला देखकर जब उनका

बेटा उनसे व्यंग्य के रूप में कहता है कि आपसे कितनी बार कहा है कि कुछ मत लाया करो तो उन्हें बहुत बुरा लगता है । वे सोचते हैं - "भला वह खाली हाथ क्यों आया? ऐसा खाली हाथ आना क्या अच्छा लगता है ... पर लाता भी कहाँ से ? उसकी कोई अपनी कमाई है । बेटों को तो अपने ही इतने खर्च है कि कुछ बचता नहीं । उसे रोटी मिल जाती है, यही बहुत है, उसके हाथ पर कोई कुछ रखे तब तो-।"[1] इस प्रकार आर्थिक रूप से कमज़ोर हो जाने के कारण वृद्धों के स्वाभिमान को ठेस पहूँची है और वे अन्दर ही अन्दर सिमटने लग जाते है । अपनी ज़रूरतों की पूर्ति केलिए दूसरों पर अथवा बच्चों पर निर्भर होने के कारण ही वे अपनी आवश्यकताओं को छुपाने लगते हैं और बच्चें इन ज़रूरतों को जानकर भी अनजान बने रहते हैं । उनकेलिए बूढ़ें माँ-बाप की आवश्यकताएँ बेकार और व्यर्थ हैं । बल्कि उनकी नज़र तो उन बची-खुची चीज़ों पर रहती है जो अब उनके माँ-बाप के पास बच गई है जैसे कि माँ की गहनों, पिता द्वारा बनाया गया मकान, पुर्खों की खेत आदि । राजी सेठ की कहानी 'उतनी दूर' में एक ऐसी माँ का चित्रण किया गया है जिसे अपने मृत बेटे के वास्ते फौजी रक्षा कोष में पैसा भेजना है । लेकिन उनका जीवित बेटा एक रुपए तक देने को तैयार नहीं होता । माँ की हर बात को वह टाल देता है । निराशा होकर माँ जब पिता की पेंशन माँगती है तो बेटा कहता है - "आती है तो क्या... तुम्हारी दवाई

1. गिरिराज शरण, शटल, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ 72

नही आती?"[1] तो मतलब यह हुआ कि आज की पीढ़ी हर चीज़ का हिसाब रखती है । यहाँ तक कि माँ-बाप केलिए खरीदी गई दवाइयों तक का हिसाब है उनके पास । वह यह मानने केलिए तैयार ही नहीं है कि बुजुर्गों की ज़रूरतों को निपटाना उसका कर्तव्य बनता है । अंत में अम्मा को रक्षा कोष में पैसे भेजने केलिए अपने सोने बेचने का निर्णय लेना पडता है तो अब बेटे को इस बात का फिक्र रह जाता है कि वह सोना उसके हाथ नही लगा। वर्तमान नई पीढ़ी बहुत स्वार्थी बात गया है । वह सिर्फ अपना चाहता है । वह यही सोचता है कि जो कुछ कमाई माँ-बाप का है, उसे भोगने का अवकाश सिर्फ उसे है । लेकिन उनके प्रति जो कर्तव्य है, उसे वह भूल ही जाता है । बुजुर्गों को हमेशा यह प्रतीक्षा रहती है कि बुढ़ापे में उनका पुत्र या पुत्री उनका सहारा बनेगी । लेकिन वास्तविकता कुछ अलग ही होती है । वे किसी न किसी प्रकार उस बोझ को अपने सिर से निकालने की कोशिश ही करते हैं । काशीनाथ सिंह की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा!' के बाबा इस प्रतीक्षा में शहर आता है कि उसका बेटा उसका अच्छा इलाज करायेगा । लेकिन उनका आना किसी को अच्छा नहीं लगता । सब मन ही मन यही सोचते रहते हैं कि कैसे मुसीबत सर पड गई । दिखावे केलिए उन्हें डॉक्टर के पास ले जाते हैं तो पता चलता है कि उन्हें केंसर है । बाबा को बताया जाता है कि वे बिल्कुल ठीक है और सारा मामला केवल दस रुपाए के खर्च में निपटा लेता है - "उन्होंने काफी सोचने-विचारने के बाद तीन पैसोंवाली

1. उतनी दूर, वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 32

बी-काम्प्लेक्स की सौ गोली, पाँच पैसोंवाली लिव फिफ्टी टू की पचास, और ऐसे ही दर्द की दस टिकियाँ ली और उन्हें अलग-अलग शीशियों में रखाया। उन्हें राहत मिली कि सारा मामला दस रुपए के अन्दर ही निपट गया ।"[1] बाबा खुशी के साथ गाँव लौट जाता है कि बेटे ने अच्छी खातीदारी की है।

एक अन्य कहानी 'कलम हुए हाथ' में बलराम जी एक ऐसे बूढे बाप का चित्र हमारे सामने लाते हैं जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी और कमाई अपने बेटों केलिए सर्मार्पित कर दिया । लेकिन बुढ़ापे में जब उनकी एक आवश्यकता आती है तो यही बटे मूँह मोड़ लेते हैं । जैसे ही बच्चे बडे होकर काबिल बन जाते हैं तो वे अपने माँ-बाप से अपना हिस्सा माँग लेते हैं । लाचार माँ-बाप अपनी पूरी संपत्ति इन निठल्ले बच्चों में बाँट देते हैं । अपना अपना हिस्सा मिल जाने के बाद सभी अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं और शेष बच जाते हैं ये बूढे जिनके सहारा बनने केलिए कोई तैयार नहीं बनता । ये लोग असहाय होकर निराशाग्रस्त हो जाते हैं और अंत में बेसहारे रहकर मृत्यु वरन कर लेते हैं । कहानी का बापू भी बेटों के चाहने पर अपना जायदाद, खेत सब कुछ उनके नाम कर देता है । वह अपने छोटे बेटे के साथ रहने लगता है जो अभी सिर्फ किशोर है । ठाकूर जब बापू से उनसे लिए कर्ज वापस चुकाने को माँगता है तो वह बेटों के पास पहूँचता है । उसे लगता है कि बेटे उनकी मदद करेंगे और उनके खेत को बचायेंगे । लेकिन बापू की बात

1. काशिनाथ सिंह, अपना राश्ता लो बाबा, कहानी उपखान, पृ. 312

सुनते ही वे कह उठते हैं - "हमारे पास इत्ते रुपया कहाँ घरे है।"[1] बेटों के बतार्व से बापू सन्न रह जाता है और तडपता हुआ वापस लौट जाता है । वह इतना दुःखी हो जाता है कि रातों-रात उनकी मृत्यु हो जाती है । हमारे चारों ओर भी ऐसे कई माँ-बाप है जो अपने वार्धक्य को अनाथों की तरह बिताते हैं और अंत में अनाथों की तरह ही मर मिटते हैं । बच्चों को चाह है तो सिर्फ उनकी संपत्ति पर ।

डॉ. अंजनीकुमार दूबे 'भावुक' की कहानी 'पंडित मनीमाधव' का बूढ़ा बाप अपने बेटों के व्यवहार से बहुत परेशान रहता है । एक बेटा शहर में अपने परिवार के साथ टिका है और छोटा बेटा घर में बेकार बैठा है । उसकी और उसके पत्नी के खर्चा का पैसा भी पंडित जी को ही उठाना था। अर्थात् जहाँ बच्चों को बूढ़े माँ-बाप का खर्चा उठाना है वहाँ अब भी बूढे माँ-बाप ही बच्चों को संभाल रहे हैं । किसी को इस बात की पर्वाह ही नहीं थीं कि पिता के पास पैसे हैं कि नहीं । उनकी एकमात्र संपत्ति अब बची थी पुरखों की खेत, जिसे भी अब छोटा बेटा बेचना चाहता है । निराश होकर वे कहते हैं - "बाप-दादों की यही तो एकमात्र कमाई बची है । उसे भी यह पागल लड़का बेचना चाहता है । मैंने अगर इसमें इज़ाफा नहीं किया है तो इसमें कोई कमी भी नहीं होने दी है । .. लेकिन यह तो मूल ही चौपट करने पर तुला हुआ है ।"[2] आज की पीढ़ी का यही मनोभाव है कि उसके पूर्वजों

1. डॉ. शिवनारायण, कलम हुए हाथ, वृद्धजीवन की कहानीयाँ, पृ. 46
2. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, पंडित मनीमाधव, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 108

की कमाई सिर्फ उसकी ज़रूरतों केलिए ही है । बच्चों को सहारा देना माँ-बाप का कर्तव्य है, जबकि अपने कर्तव्यों के प्रति उनको ध्यान भी नहीं रहता। जब माँ-बाप इसकी पूर्ति नहीं कर पाते तो वे उन्हें अपना शत्रु मान लेते हैं । कहानी का पंडितजी भी खेत न देने के कारण बेटे केलिए शत्रु बन जाता है । इससे निराश पंडितजी एक दिन दुःखीमन मर जाता है । इस प्रकार अपनी पूरी ज़िन्दगी से न वह स्वयं खुश रह पाता है और न बच्चों को खुश रख पाता है ।

ऊर्मिला शिरीष की कहानी 'बाँधो न नाव इस ठांव बंधु' के पिताजी अपनी ज़िन्दगी की अंतिम घडी गिन रहे हैं । तब भी उनके बेटे को उनसे शिकायत है कि वह सब कुछ बाँधकर बैठा है । वह पिता के साथ लडता रहता है । दुःखी मन के साथ पिता कहता है - "और क्या लेना चाहते हो? सब कुछ तो दे दिया था । जो है वह भी दे दे, ताकि मेरे मरने पर अंतिम क्रिया केलिए पैसे तक न बचें । तुम लोगों का क्या भरोसा, उसी समय लड़ने बैठ जाओ या हिसाब करने लगों कि कौन लकड़ियां लाएगा कौन बांस । बस इतना ही पैसा है मेरे पास कि मेरी अंतिम क्रिया आराम से हो जाएगी।"[1] इससे व्यक्त है कि आजकल माँ-बाप का बच्चों पर जा भरोसा है वह उठ गया है । इसका कारण भी खुद नई पीढ़ी ही है । वृद्धजनों को पूर्ण यकीन है कि जिन बच्चों ने जीते-जी उनका ख्याल नहीं रखा वे उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी क्या श्रद्धा रखेंगे ।

1. बाँधों न नाव इस ठांव बंन्धु, वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 139

सविता मिश्र की 'धूप में झरता अकेला मन' एक बाप का अपने बेटे के प्रति अटूट प्रेम को दिखाता है और बेटा बाप के इस प्रेम का फायदा उठाता रहता है । यह जानकर भी कि पिता के पास पैसे नहीं हैं, वह अपनी हर ज़रूरत केलिए पिता से पैसा माँगता ही रहता है । अंत में निस्सहाय बाप कहता है - "लेकिन बेटा ! अब तो इतना पैसा मेरे पास है नहीं। थोड़ा-बहुत है जो तुम्हारी माँ की दवाई के लिए बचा रखा है ।"[1] इस प्रकार उनकी पूरी संपत्ति बच्चों द्वार लूटी जाती है । अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त बाबूजी बिल्कुल अकेला हो जाता है । अपने काम के न होने के कारण पुत्र भी उनकी उपेक्षा कर देता है । इस प्रकार बूढ़े बाप की शेष ज़िन्दगी दुभर बन गई ।

जैसा कि हमने पहले भी कहा कि आधुनिक समाज बहुत ही स्वार्थी बन गया है । वे हर चीज़ में अपना लाभ देखते हैं । उनकी इस मनोवृत्ति को जानकर ही आज के बूढ़े माँ-बाप भी सावधान हो गए हैं । ये लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि बिना किसी लाभ के, ये बच्चे उनकी देखभाल नही करेंगे । इसी मज़बूरी के कारण आजकल जब माँ-बाप वसीयत बनाते हैं तो अक्सर उसमें लिखा जाता है 'माता-पिता के मृत्योपरान्त'। उससे बच्चे भी उनके ख्याल रखने के दबाव में आ जाते हैं, क्योंकि उनको मालूम है कि अगर इन बूढों का अच्छा ख्याल नही रखा गया तो सारी संपत्ति किसी ओर

---

1. डॉ. शिवनारायण, धूप में झरता, अकेला मन, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 156

के हाथों लग जाएगी और उनको कुछ नहीं मिलेगा । जो माँ-बाप होशियारी से काम नहीं लेते, उनकी स्थिति दर्दनाक रह जाती है । निर्मला सिंह की कहानी 'प्यासी रेत' की अम्मा को बच्चों ने ठुकरा दिया है । केवल इसलिए कि बूढ़ी के हाथों कुछ भी नहीं बचा । कहानी बताती है - "एक छोटी-सी भूल कर गए मौसाजी, जायदाद की वसीयत में मौसी का नाम लिखना भूल गए।"[1] बच्चों केलिए मौसी सिर्फ उस गन्ने के समान रह गया है जिसका पूरा रस निकाला जा चुका है । उनको यकीन है कि अब बुढ़िया को साथ रखने का कोई फायदा नहीं । केवल इस कारण कि मौसी निर्धन कंगाल के समान है, उनके बच्चे उनकी उपेक्षा कर देते हैं ।

रूपलाल बेदिया की कहानी 'पीले पत्ते' अपने बेटों द्वारा रास्ते में उपेक्षित एक निर्बल बाप का मार्मिक चित्रण करता है । उनका दौलत हड़पने केलिए बेटे उनसे झूठा प्रेम का दिखावा करते हैं । बेटों के छल समझे बिना बूढा भी उनपर विश्वास कर बैठता है और उनके कहे गए सभी कागज़ाद पर बिना सोचे समझे हस्ताक्षर कर देता है । कहानी में लिखा गया है - "सारी कागज़ी कार्रवाई पूरी होने के बाद दोनों बेटे एक जगह बैठाकर 'अभी आते है' कहकर कही चले गये ।"[2] अक्सर हमारे आसपास ऐसी घटनाएँ आजकल होती रहती हैं । बच्चे माँ-बाप को बस स्टांटों में, ट्रेइनों में अथवा बीच रास्तों में ही छोडकर चले जाते हैं । जिन माँ-बाप को एक ज़माने में ईश्वर समान

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, प्यासी रेत, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 115
2. डॉ. शिवनारायण, पीले पत्ते, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 164

माना जाता था, जिन लोगों ने अपनी पूरी ज़िन्दगी इन बच्चों को बडा करके काबिल बनाने में त्याग दिया, उन्हें केवल इस कारण घरों से निकाला जाता है कि उनकी ओर से आर्थिक प्राप्ति रुक गई है और वे केवल फालतू रह गए हैं । अपने बच्चों के इस व्यवहार से निराश माँ-बाप या तो भटकते-भटकते अपने दम तोड देते हैं अथवा किसी तीर्थ पर अथवा वृद्ध सदनों में चले जाते हैं ।

माँ-बाप अपनी पूरी ज़िन्दगी, कमाई, सभी, बच्चों को पाल-पोसकर बडा करने में लगा देते हैं । वे कुछ भी अपने लिए बचाकर नही रखते । उनका विश्वास रहता है कि जब अपने बच्चे बडे हो जाऐंगे तो उनका भी ख्याल रखेंगे । लेकिन ये नालायक बच्चे बडे होते ही अपना रास्ता ढूँढ कही निकल जाते हैं । माँ-बाप से अलग, कई अन्य जगह पर अथवा विदेशों में बस जाते हैं और फिर पीछे मुडकर भी नहीं देखते । उनको बिलकुल भी चिन्ता नहीं रहती कि उनके माँ-बाप कैसे जी रहे हैं अथवा उनका घर कैसे चल रहा है । वे कभी कभार उनके पास आ भी जाते हैं तो कुछ अपने मकसद के साथ ही आते हैं । फिर भी माँ-बाप को उनसे प्रतीक्षा रहती है कि वे बुढ़ापे में उनका हाथ बढाएँगे । मृदुला गर्ग की कहानी 'लौटना और लौटना' का बाप अपनी पूरी संपत्ति अपने बेटे केलिए खर्च कर देता है और उसे अमरीका भेजता है । उनको बहुत भरोसा रहता है कि बेटा उनके बूढापे में सहारा बनेगा । लेकिन होता कुछ विपरीत ही । वह गाँव आकर डाक्टर

लडकी से शादी करता है और वापस चला जाता है । बापूजी को लगता है कि उसके द्वारा बनाया मकान उनके रहने केलिए छोडा जाएगा । लेकिन ऐसा भी नहीं होता - "जाते समय हरीश मकान किराये पर चढ़ा गया और किराये के रुपये अपने नाम से बैंक में जमा कराने का बंदोबस्त कर गया ।"[1]

अकाल में ही बच्चों की मृत्यु हो जाने के कारण आर्थिक संकट में फँसे वृद्ध माँ-बाप की कथाएँ कहती हैं - मन्नु भण्डारी की 'अकेली' कहानी और मृणाल पाण्डे की 'दोपहर में मौत' कहानी। बडी उम्मीदों के साथ माँ-बाप बच्चों को बडा करते हैं । लेकिन बूढ़ापे में जिन हाथों को उनका सहारा बनना है, वे ही नष्ट हो जाते है तो इन वृद्धों की स्थिति बिगड जाती है । वे मानसिक रूप से तो कमज़ोर पड ही जाते हैं साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति भी बिगडी रहती है । उन्हें अपने शेष की ज़िन्दगी बिताने केलिए बहुत कष्ट उठाने पडते हैं । 'अकेली' कहानी की सोमा बुआ पुत्र की मृत्यु के बाद एकाकीपन की ज़िन्दगी बिताती है । जब पति भी उसे छोड जाता है तो वह आर्थिक तंगी भी महसूस करने लगती है। उसकी हर ज़रूरत अधूरी रह जाती है । अपनी अवस्था पर दुःखी होकर वह कहती है - "रुपये तो नहीं निकले बहू। आए भी कहाँ से, मेरे कौन कमानेवाला बैठा है ? उस कोठरी का किराया आता है, उसमें तो दो समय की रोटी निकल जाती है जैसे-तैसे !"[2] हमारे चारों ओर ऐसे अनेकों बूढ़े लोग हैं जो बच्चों द्वारा उपेक्षित होने पर

1. मृदुला गर्ग, लौटना और लौटना, संगति-विसंगति, पृ. 27
2. मन्नू भण्डारी, अकेली, मेरि प्रिय कहानियाँ, पृ. 14

अथवा उनकी मृत्यु हो जाने पर दूसरों के सहारे जीते है, कभी-कभी उनकी हालत उन्हें भिखमंगे तक बना देती है । क्योंकि पेट भरने केलिए उनके पास कोई और चारा नहीं रहता । 'दोपहर में मौत' कहानी के बूढ़े माँ-बाप भी बेटे की मृत्यु हो जाने के बाद यंत्र तुल्य बन जाते हैं । उनका कोई पूछनेवाला भी नहीं रहता और कमानेवाला भी। वे अपने-आप को इतने अकेले मेहसूस करते हैं और ज़िन्दगी से इतने ऊब जाते हैं कि एक प्रकार की मशीनी व्यवहार उनमें आ जाता है । बेटे के दोस्त से मिलने पर वे रेडियो के समान बोलने लगते हैं । उनका व्यवहार देखकर जनार्धन को बहुत आश्चर्य होता है । क्योंकि वह बीच-बीच में अपने दुर्भाग्य का हिसाब निकालता है कि बेटे की मृत्यु से उसे किस तरह की आर्थिक तंगी पड गई है । वह कहता है - "पिछली बार रघु आया था तो एक हाउसिंग सोसाटयी में कुछ रुपये डाल गया था अपने नाम एक फ्लैट केलिए- हम सोच रहे थे कि जेनी से लिखवा लें कि वह प्लाट अब माधव के नाम ट्रांसफर कर दे।"[1] बेटे की मृत्यु हो जाने पर भी उसकी चीज़ों पर मोह रखना दूसरों की नज़र में स्वार्थता ही है, लेकिन यह उनकी मज़बूरी ही थी कि आगे की ज़िन्दगी बिताने केलिए कुछ न कुछ उपाय ढूँढ निकालना चाहे वह नाइन्साफी ही क्यों न हो ।

उपर्युक्त सभी कहानियाँ वृद्धजनों की आर्थिक तंगी को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं ।आर्थिक स्थिति पहले की भाँति मज़बूत न रह पाने के

---

1. मृणाल पाँडे, दोपहर में मौत, यानी कि एक बात थी, पृ. 249

कारण वह सभी रूप से टूट जाता है । नौकरी से निकलने के बाद अथवा सेवानिवृत्त होने के बाद जो पैसा उसके हाथ लगता है, अक्सर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए पर्याप्त नहीं होता । अपने जोडे हुई पैसों को भी अधिकतर वृद्धजनों ने अपनी संतानों की पढाई, बेहतर भविष्य और विवाह में खर्च कर दिया होगा । जब वृद्धावस्था में अपनी ज़रूरतों केलिए उन्हें पैसे की आवश्यकता पडती है तो उन्हें अपने बच्चों पर निर्भर होना पडता है । लेकिन ये बच्चे इनकी आवश्यकताओं को अनावश्यक ही मानने लगते हैं और पैसे देने में हिचकने लगते हैं । इस कारण अधिकतर वृद्ध व्यक्ति अपने आप को असुरक्षित मानने लगते हैं और लाचार अनुभूत करते है । इस प्रकार पूरे परिवार की आवश्यकताओं का निर्वाह करनेवाला व्यक्ति अपने आप को शक्ति विहीन और ऊर्जा विहीन पाकर अपनी छोटी-छोटी ज़रूरतों केलिए बहुत बार मोहताज हो जाता है । वर्तमान उपभोगवादी दृष्टिकोण और स्वार्थ मनोभाव के कारण उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् उसे मिलने वाला धन ही उसकी संतानों को उसका दुश्मन बना देता है । आधुनिक पीढ़ी चाहती है कि वह धन भी उसे प्राप्त हो । क्योंकि उनके मुताबिक वृद्ध व्यक्तियों की कोई ज़रूरतें नहीं रहती और यदि वृद्ध लोगों ने इन पैसों को अपनी सुरक्षा के प्रति अपने पास रखने का फैसला ले लिया तो बच्चें झगड़ा करते हैं और यदि यह धन संतानों के हाथ लग गया तो इन वृद्ध जनों की आगे की स्थिति भी शोचनीय ही रहेगी । संतान उन्हें भूल जाएंगी और उन्हें ठुकरा देंगे क्योंकि वे जानते हैं कि अब इन बूढ़ों से कुछ भी मिलने

वाला नहीं है । इस प्रकार सभी हालात में वार्धक्य अभिशाप बन जाता है । आधुनिक समाज की इस मनोवृत्ति और बूढ़ों की आर्थिक विषमताओं को ध्यान में रखते हुए डॉ. स्वाति तिवारी ने लिखा है- "आज आदमी के सेवनिवृत्त होते ही वह उपेक्षा का शिकार होने लगता है । ग्रेच्यूटी और पेंशन की रकम, रुपये-पैसे रहने तक तो वह 'बाबा', 'बाबूजी', 'दादाजी', 'दादू', के संबोधनों से पुकारे जाते है, फिर वे बुड्ढे, डोकरे और सठियाए हुए लोग जैसे उद्‌बोधन से अपमानित किए जाते है ।.... तब उन्हें एक उपेक्षित घर (पुराना पैतृक मकान) या एक उपेक्षित कमरा, रोटी-दाल, पुराने कपडे-कम्बल दे दिया जाता है।"[1]

अगर कुछ बातों पर ध्यान दिया जाए तो वार्धक्य की आर्थिक विषमताओं को कुछ हद तक दूर किया जा सकता है । वृद्धावस्था में आर्थिक स्थिति में गिरावट की संभावना को ख्याल में रखते हुए व्यक्ति को शुरुआत से ही योजनाबद्ध होना चाहिए । वृद्धावस्था में आर्थिक परनिर्भरता कम रखने केलिए वृद्धों को पेंशन, भविष्यनिधि, बीमा योजनाओं, बचत योजनाओं, शेयरों आदि निवेशों में सक्रिय रहना चाहिए । इसके अलावा सेवानिवृत्त होने के बाद भी अपने आप को अपनी क्षमता के अनुसार किसी व्यवसाय और नौकरी से जुड़ा रखना चाहिए और इस प्रकार अपने आय को बढ़ाया जा सकता है । अगर ऐसा किया जाए तो बढ़ते हुए उपभोक्तावाद तथा

---

1. स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, पृ. 21

बाज़ारी व्यवस्था में वृद्धावस्था के प्रतिकूल प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है ।

मानसिक शिथिलताएँ

ऊपर बताए गए दोनों पहलुओं का गहरा प्रभाव वृद्ध व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य पर पडता हैं । शारीरिक स्वास्थ्य में गिरावट, आर्थिक तंगी आदि वृद्ध व्यक्ति में मानसिक तनाव, निराशा, अवसाद, असंतोष तथा डिप्रेशन पैदा करते हैं । इससे विक्षिप्तावस्था, भ्रम तथा कई तरह के अन्य मानसिक रोग भी जन्म लेते हैं । मानसिक रूप से अस्वस्थ वृद्ध व्यक्ति अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रख पाता और चिड़चिड़ा हो जाता हैं जिसके कारण परिवार और समाज के प्रति उसका व्यवहार अरुचिकर हो जाता है । जिस तरह से बूढ़ों की मानसिक स्थिति का प्रभाव परिवार और समाज पर पड़ता है, उसी प्रकार वृद्धों की मानसिक स्थिति पर परिवार और समाज का असर भी होता है । यदि वृद्ध व्यक्ति पारिवारिक और सामाजिक समस्याएँ झेल रहा है अथवा पारिवारिक या सामाजिक तौर पर संतुलित अवस्था में नहीं हैं तो इसका गहरा असर उसकी मानसिक स्थिति पर पड़ती है ।

किसी भी मनुष्य के जीवन का बुनियादी पहलू है परिवार। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति के पारिवारिक जीवन में भी कई प्रकार के बदलाव आने लगते हैं । भारतीय परिवारों में बूढ़ों का बहुत बडा मान-सम्मान रहा

है, क्योंकि संयुक्त परिवारों में वृद्धजनों को आदर के साथ देखा जाता था । लेकिन आर्थिक और सामाजिक स्वरूप में आए परिवर्तन और पाश्चात्य संस्कृति की घुसपेठ के कारण परिवार का स्वरूप बिलकुल बदल गया है । आधुनिक समाज में वृद्ध व्यक्ति उपेक्षित रह गया है । परिवारों में रह रहे वृद्धजन अकेलेपन से ग्रस्त हैं । परिवार में रहते हुए भी उनके साथ समय बिताने वाला कोई नहीं होता । जीवन-साथी का गुज़र जाना अथवा एक दूसरे से बिछुडकर रहना, पारिवारिक सत्ता नई पीढ़ी की हाथों आना, बच्चों का दूर रहना आदि के कारण वृद्धजन एक प्रकार के भय, संत्रास, उदासीनता और मायूसी से होकर गुज़रते हैं, जो उन्हें मानसिक तौर पर बिल्कुल कमज़ोर कर देता है ।

वृद्धजनों पर लिखी गई अधिकतर समकालीन कहानियों में इन्हीं मानसिक दबाव को उठाया गया है । क्योंकि उनपर बीतती सभी समस्याओं का मूल यही मानसिक संघर्ष होता है । कहानीकारों ने विभिन्न पहलुओं के माध्यम से इस समस्या को हमारे सामने उजागर किया है ।

मृत्यु-भय

वृद्धावस्था अपने साथ एक प्रकार की भावनात्मक उथल-पुथल लेकर आती है । इसका यह कारण है कि इस समय व्यक्ति को अपना जीवन हाथों से फिसलता हुआ लगता है । उसको मालूम होता है कि जीवन यात्रा का

अंतिम पड़ाव आ गया है और यही सोच उसके मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न कर देता है । इसे हम मृत्यु का भय कह सकते हैं । मृत्यु का सर्वाधिक भय उसी को होता है जो मृत्यु की प्रतीक्षा करता है । उसकी यही नकारात्मक सोच उसके डर को भी बढ़ा देता है । यही डर उन्हें मनोविक्षेप की ओर ले जाता है । 'डर' कहानी में मृत्यु भय से अस्वस्थ एक बूढ़ें आदमी का चित्रण बखूबी से हुआ है । मृत्यु के डर से वह घर से बाहर निकलने को तक हिचकता है और न अपनी घरवाली को भी बाहर निकले देता है । उनके मन में एक प्रकार की असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है । उनके इस विचित्र व्यवहार को देखकर उनकी पत्नी कहती है - 'तेरे काका सठिया गए हैं । कहते हैं इत्ता सोना लाद कर घूमेगी तो लूटपार में मारी जाओगी । सब अन्दर लाकर में रखवा दिया है । अब इस उमर में ये नया डर।"[1] इस डर के कारण काका, काकी से एक माला तक नहीं पहनाता । उनमें असुरक्षा की भावना इतनी बढ़ जाती है कि भरी दोपहर में भी वे बाहर नहीं निकलते और महज आधा घण्टा भी पत्नी को घर में अकेला नहीं छोडते । अर्थात वे एक प्रकार के भावनात्मक तनाव के शिकार हो गए है । कभी-कभी परिवार की यही उपेक्षा और यह मृत्यु भाव वृद्धों को आत्महत्या तक के निर्णय ले लेने को भी बाध्य कर देते है ।

गोविन्द मिश्र की कहानी 'घेरे' के सेवानिवृत्त वृद्ध को भी मृत्यु का

---

1. स्वाति तिवारी, डर अकेले होते लोग, पृ. 103

डर हर समय सताते रहते हैं । उन्हें लगता है कि एक-एक करके उनके सभी मित्र अथाव साथी चले जायेंगे और जीवन-संध्या में वे अकेले पड जाएँगें। वे सोचते है - "आगे जो आनेवाला है, वही शायद सबके सामने साकार हो रहा है, उन्हें डरा रहा हैं, यह जमावडे कितने नकली हैं । हर रोज़ अलग-अलग घर से तैयार होकर बूढे यहाँ शाम बिताने आते हैं । किस दिन कौन उठा लिया जायेंगा, यह पता नहीं । लेकिन सभी बारी-बारी से उठ जाएँगे, एक-एक करके, यह पक्का है ।"[1]

जैसा कि हमने पहले भी देखा कि वृद्धावस्था में शरीर शिथिल हो जाता है और इस समय व्यक्ति अनेक बीमारियों से घेर जाता है । बीमार वृद्ध केलिए जीवन बहुत अधिक कठिन होता है । वह अपनी बीमारी पर बहुत अधिक सोचता है और यही सोच उसके मन में मृत्यु का डर पैदा कर देता है । इस कारण वृद्धों का मन कहीं भी टिकता नही हैं । अपनी बीमारियों के इलाज केलिए वे हर तरह की चिकित्सा करते हैं । फिर भी उनके मन तृप्त नहीं रहते । माधव नागदा की कहानी 'केस नंबर पाँच सौ सोलह' का बूढ़ा अपनी रोगावस्था से इतने डरे और निराश रहते हैं कि वे बारी-बारी सभी पैथियाँ' करते रहते हैं । लेकिन उन्हें कभी राहत नहीं मिलती । देवीप्रसाद बताते है कि "उन्होंने ऐलोपैथी कभी की छोड़ दी । एक दवा लो, नयी बीमारी तैयार। फिर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरंभ की । थोड़े दिन पहले यह

1. गिरिराज शरण, घेरे, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 41

आश्चर्यप्रद लेख पढ़ा कि आयुर्वेदिक भस्में, काढ़ें, आसव भी रिएक्शन करते हैं । अब होम्योपैथी।"[1] अधिकतर वृद्धजन आज-कल ऐसी स्थिति से गुज़रते हैं । जो लोग आर्थिक रूप से प्रबल है, उनकेलिए या उनके घरवालों केलिए यह ज़रा सी बात है, लेकिन जो लोग आर्थिक रूप से कमज़ोर होते हैं उनके लिए इस तरह कई चिकित्सा करना मुश्किल है । जब परिवारवाले इसकेलिए तैयार नहीं होते, तो यह अधिक संत्रास उत्पन्न करता है । वे अपनी झुंझलाहट या तो दूसरों पर उतारते है या फिर स्वयं घुलते रहते हैं । मृणाल पाण्डे की कहानी 'चिमगादड़े' की ममा अपनी रोगावस्था से इतनी परेशान है कि उन्हें सभी से चिड़चिडापन हैं । मृत्यु के भय ने उसे इतना घेर लिया है कि वह हर समय किसी न किसी को कोसती रहती है । यहाँ तक उन्हें अपनी बेटियों पर भी विश्वास नहीं हैं । वह कहती है - "हँह ! अरे, जैसी हालत है, मैं ही जानती हूँ ... ऐसा दर्द उठता है कि बस, जान खिंची जाती है । इस डॉक्टर लाल का तो दवा ही बेकार है.. क्या भरोसा इन नेटिव डॉक्टरों का... थू।"[2] ममा को लगता है कि उनकी बीमारी ठीक न होने की वजह उनके डॉक्टर है । डॉक्टर की इलाज की कमी है । बूढ़ों का इस तरह से भ्रम पालना ही उनके ठीक न होने का प्रमुख कारण है क्योंकि यहाँ रोग शरीर से ज़्यादा मन को लगा हैं । 'भय' का रोग, जिसके कारण मन हमेशा चिन्तित और अस्वस्थ रहता है । मन की यही उथल-पुथल शरीर को भी लग जाता

---

1. शीतांशु भरद्वाज, केस नंबर पाँच सौ सोलह, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 54
2. मृणाल पाण्डे, चिमगादड़ें, यानी कि एक बीत थी, पृ. 17

है और वे अधिक कमज़ोर और दुर्बल हो जाते हैं । यदि मन को सशक्त बनाया जाए तो शरीर की इन बीमारियों को भी कुछ हद तक दूर किया जा सकता है ।

बूढ़ों का यही चिड़चिड़ेपन उन्हें शिकायती भी बना देता है । अपने शरीर के बारे में और रोग व मृत्यु के बारे में अधिक सावधान रहने के कारण ही उन्हें हमेशा हर बात पर और हर किसी पर शक रहता है । उनकी घबराहट उन्हें ऐसे सोचने केलिए मजबूर कर देती है कि जानबूझकर उनका तिरस्कार किया जा रहा है । अमृत राय की कहानी 'आँखमिचौनी' की अम्मा को हर बात पर शिकायत है । उन्हें लगता है कि उनका ख्याल नहीं रखा जा रहा है । वह कहती है - "वैदजी ने कहा था रोज आप यह चूरन ले लिया कीजिए... सब जानते है कि मुहताज है... भगवान उठा भी नहीं लेता .... छुट्टी मिले...।"[1] जो व्यक्ति मृत्यु से अधिक डरता है वहीं इस तरह की बातें करता रहता हैं । अपने मन की दुविधा और डर को छिपाने की चेष्ठा मात्र है यह ।

कभी-कभी रोग-ग्रस्त होने के साथ-साथ जब बूढ़े, बच्चों द्वारा उपेक्षित भी रह जाते हैं तो यहीं मृत्युबोध इनमें जागता है । उन्हें लगने लगता है कि मौत उनके चारों ओर मंड़रा रही है । राजी सेठ की कहानी 'उसका आकाश' के पिता रोगावस्था में सालों से खाट पर पड़ा है । बेटे के साथ रहते हुए भी

1. गिरिराज शरण, आँख मिचौनी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 15

वे अकेलेपन और उपेक्षा की ज़िन्दगी बिता रहे हैं । घर का कोई भी सदस्य उनका ख्यान नहीं रखता । अब उनको अपनी ज़िन्दगी से ही ऊब लगने लगा हैं । साथ ही मृत्यु का भय भी उन्हें घेर लेता है - "बाएँ हाथ से दाएँ हाथ को छू लेने की कोशिश की.. कुछ नहीं हुआ.. उसका मरना भी महसूस न हुआ । ... क्या मर जाना इतना निःशब्द, इतना सामान्य, इतना साधारण होता है कि शरीर के अर्द्धांग में होता रहे और बोध भी न हो ? मृत्यु ऐसी होती है क्या ?"[1] वार्धक्य में बूढ़े लोग संबन्धों को लेकर अधिक भावुक हो जाते है । संबन्धों के प्रति मोह बढ़ जाने के कारण उससे विछोह का डर उसके हृदय को भयाक्रान्त कर देता है । इसका परिणाम यह होता है कि वे चाहने लगते हैं कि उसकी संतान हमेशा उसके साथ ही रहें । लेकिन वर्तमान नई पीढ़ी अपनी ज़िन्दगी और कामकाज से इतनी जुड़ी हुई है कि उसके लिए अपने वृद्ध-माँ-बाप के साथ हमेशा रहना मुमकिन नहीं हैं । बच्चों की यह उपेक्षा उन्हें और अधिक उदासीन बना देती हैं और उनका एकमात्र इंतज़ार मृत्यु का आगमन रह जाता है ।

वैधव्य

जहाँ एक ओर मृत्यु का संत्रास होता है, वहीं दूसरी ओर जीवन-साथी की विदाई वृद्धजनों को मानसिक रूप से और अधिक कमज़ोर कर देती हैं। वह उनको एकदम तोड़कर रख देती है । जिस व्यक्ति के साथ कई वर्ष

1. गिरिराज शरण, उसका आकाश, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 102

व्यतीत किये हो, वही जब इस सन्ध्या बेला में छोड़कर चला जाता है तो व्यक्ति का जीवन पूर्णरूपेण रिक्तता से भर जाता है । जीवन का यही अकेलापन उसे मानसिक तनाव की ओर खींच देता है ।

सूर्यबाला की कहानी 'सौगात' में पत्नी की मृत्यु के पश्चात् एक वृद्ध व्यक्ति के अकेलेपन के कारण होते मानसिक दबाव का मार्मिक चित्रण हुआ है । पत्नी के मर जाने के बाद बूढ़े को पूछनेवाला कोई नहीं होता । पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने बडे लाड-प्यार से अपनी संतानों को बड़ा किया लेकिन वृद्धावस्था में जब उन्हें सहारे की आवश्यकता पड़ी तो उनकी संतान मुख मोड़ लेती है । उनकी आँखों का ऑपरेशन होने पर उनकी वृद्धा भौजी उनका साथ देती है जो स्वयं अकेली है । लेकिन बेटा चाहता है कि वह वापस चली जाए । पिता चाहते है कि वे कुछ दिन और रुके-"यही सोचता था, जरा कुछ दिन और..." "कुछ दिन और क्यों....?' अब तो ऑपरेशन हो गया । अस्पताल से छुट्टी....जहाँ तक नाश्ते-खाने का सवाल है आपको टाइम से पहुँच ही जाता है,.... अब आप बूढ़े हुए, भजन-पूजा में ध्यान लगाइए।"[1] पिता की मानसिक भूख अथवा पीड़ा को समझे बिना वह उनका मज़ाक उठाता है । उसे लगता है कि पिता को वार्धक्य में भी भौतिक चाह पड़ी है । लेकिन वास्तव में यह उनकी शारीरिक अथवा नैसर्गिक इच्छा न रहकर मानसिक चाह है । शरीर से बढ़कर उनका अकेला मन किसी का

1. गिरिराज शरण, सौगात, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 144

साथ चाहता है । मन की इस असंतुलित अवस्था के कारण को मदन मोहन अपनी कहानी 'बूढ़ा' में व्यक्त करते हैं । बूढ़े के ज़रिए वे कहते हैं - 'हालाँकि ये इच्छाएँ अभी बहुत स्पष्ट नहीं थी, पर उनकी लुका-छिपी बूढ़ा प्रायः अनुभव करता । वह कयास लगाता कि शायद यह पत्नी की कमी के नाते हो । या अतीत में खो गयी कोई निधि, आत्मा या जिसे प्यार कहते हैं, वह।"[1] अक्सर वृद्ध विधवाओं से अधिक वृद्धों को मन की यह उथल-पुथल अधिक होती है । पति की मृत्यु के उपरान्त वद्धाएँ स्वयं को एक हद तक परिवार से जोड़ लेती है । लेकिन पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पति एकदम अकेला पड जाता हैं । घरेलू कामों में और अन्य कामों में अपने को व्यस्त न रख पाने के कारण और परिवारवालों की उपेक्षा के कारण बूढ़े बहुत ही अकेले पड़ जाते हैं । अपनी हर ज़रूरतों केलिए बहुओं पर निर्भर होना भी उनके मन को संघर्षमय बना देता है । इस प्रकार वे उदासीन हो जाते हैं और अपनी शेष ज़िन्दगी से ही छुटकारा पाना चाहते हैं ।

पति-पत्नी के आपसी बिछुडन

वैधव्य के समान ही पीड़ाजनक स्थिति है, वार्धक्य में एक दूसरे से बिछुडकर अथवा अलग होकर रहना । कभी-कभी बच्चों के कहने के मुताबित या उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए वृद्ध माँ-बाप को न चाहकर भी एक दूसरे से अलग होना पड़ता हैं । लेकिन एक दूसरे से दूर

1. डॉ. शिवनारायण, बूढ़ा, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 103

रहकर भी उनका मन आपस में जुडा रहता है । दोनों के मन में एक-दूसरे की चिन्ता उमडने लगती है । जिससे मन हमेशा केलिए अस्वस्थ बन जाता है । एक ओर बच्चों के प्रति प्यार एवं वात्सल्य और दूसरी ओर एक दूसरे के प्रति प्रेम एवं ख्याल, इन वृद्धों को दुविधा में डाल देत हैं । लेकिन अक्सर यही होता है कि अपनी मानसिक इच्छाओं को दबाकर वे बच्चों की इच्छाओं की पूर्ति केलिए अपने-आप को तैयार कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप वे अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं । वृद्धावस्था में साथी की आवश्यकता के महत्व को चित्रित करनेवाली कहानी है नरेन्द्र कोहली की 'शटल'। इस कहानी में संतान अपने सुख व आराम केलिए अपने वृद्ध माँ-बाप का इस्तेमाल करती है । बडा बेटा अपनी माँ को अपने बच्चों की देखभाल केलिए अपने घर ले जाता है तो बूढ़ा बाप घर पर अकेला हो जाता है । घर पर उनसे दो बातें करनेवाला भी कोई नहीं होता । उनको अकेलापन बहुत अखराता है और वे सोचते हैं - 'उसके ये बेटे, जिनकी शादियों को दो-दो, चार-चार साल हुए हैं वे क्यों नहीं सोचते कि उनके बाप की शादी को पैंतीस साल हो गये हैं । ये साले अभी से अपनी बीवियों से एक दिन भी अलग नहीं रह सकते तो वह, जिसने पैंतीस साल में अपने आपको एकदम आश्रित बना लिया हैं - कैसे भागवन्ती के बिना रह सकता है । बुढ़ापे में और कोई साथ बैठकर प्रसन्न भी तो नहीं है - वे उनकी पैंतीस वर्षों की संगिनी को भी उससे अलग करने पर तुले हुए हैं ।"[1]

1. गिरिराज शरण, शटल, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 67

उसी प्रकार सूर्यबाला की 'निर्वासित' और सत्यराज की 'अनधिकृत स्वान' आदि कहानियों में भी एक दूसरे से बिछुडे वृद्ध दम्पतियों का मार्मिक चित्रण बखूबी से हुआ है ।

सत्ता का बदलना

परिवार की सत्ता जब बहु-बेटों के हाथों में चली जाती है तब वृद्धजनों को अपने अधिकार कम हो जाने का मलाल भी रहता हैं । साथ ही साथ आर्थिक प्रभुत्व न रहने के कारण वे अपने-आप को तुच्छ भी मानने लगते हैं । ये विचार उनके मन में एक प्रकार के संघर्ष और उथल-पुथल पैदा कर देते हैं । उन्हें लगने लगता है कि हर कोई उनकी उपेक्षा कर रहा हैं । ऐसी स्थिति में वृद्ध व्यक्ति प्रायः आंतरिक द्वन्द्व से ग्रस्त हो जाते हैं । अपने को दूसरों द्वारा वृद्ध और अक्षम समझा जाना उन्हें पसन्द नहीं आता । इस कारण वे अपनी मान्यताओं को नई पीढ़ी पर थोपने की कोशिश करते हैं और अपने विचारों तथा मनोभावनाओं के अनुरूप दूसरों को चलाना चाहते हैं । रामकुमार भ्रमर की कहानी 'मोहताज' की अम्मा को बेटे के घर में कुछ भी पचता नहीं है । वह हर बात पर कुछ न कुछ कमियाँ निकाल लेती है और बहु को समझाती रहती है ।अपनी पोतियों को फ्रोक पहने देख वह बहु से कहती है - "शारदा, लड़कियों को अब ऐसी बेतुकी फ्राकें शोभा नहीं देती, जिनसे बदन झाँकता रहे । छोटी नहीं हैं अब।"[1] नतीजा यही होता है

1. गिरिराज शरण, मोहताज, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 113

कि दादी की बात-बात पर टोकना और सुझाव देना पोतियों को अच्छा नहीं लगता और वे उनसे घृणा का भाव रखते हैं ।

कृष्णा सोबती की कहानी 'दादी अम्मा' की दादी भी इसी मानसिक तनाव से गुजरती हैं । अपने समय में वह घर की मालकिन रही थी । लेकिन वृद्धावस्था तक पहुँचते-पहुँचते घर का सारा अधिकार बहुओं के हाथ लग जाता है । अब घर में उन्हें सुननेवाला और माननेवाला कोई नहीं रहा था । अम्मा जब अपने अधिकारों से वंचित रह जाती है तो यह उनमें विषाद का भाव पैदा कर देता है जिसके कारण वह चिड-चिड़ा बन जाती हैं । "और अम्मा तो सचमुच उठते-बैठते बोलती है, झगड़ती है, झुकी कमर पर हाथ रखकर वह चारपाई से उठकर बाहर आती है तो जो सामने हो उस पर बरसने लगती है ।"[1] इस प्रकार अपने-आप को नई परिस्थितियों के अनुसार ढाल न पाने के कारण वृद्ध लोग डिप्रेशन के शिकार भी बन जाते हैं । ऐसे तनाव की स्थिति में कुछ बूढ़े नशे का सहारा लेते हैं अथवा तनाव से बचने केलिए दवाईयों का सेवन करते हैं जिससे तात्कालिक आराम तो मिलता है किंतु व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से कमज़ोर हो जाता है । सुदर्शन वशिष्ठ की 'बार में बूढ़ा' कहानी का बूढ़ा अपने तनाव से मुक्त होने केलिए शराब का सहारा लेता हैं । वे अपने घर में बेटे और बहु द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित हैं । रिटायरमेंट और पत्नी की मृत्यु के बाद वे घर पर बिल्कुल

1. कृष्णा सोबती, दादी अम्मा, सोबती एक सोहबत, पृ. 152

अकेले पड गए थे । उन्हें सुनने वाला कोई नहीं था । अचानक उनके दोस्त भण्डारी का शहर छोडकर गाँव चला जाना भी उन्हें तोड़कर रख देता है । एकांकीपन और निराशा उन्हें इस प्रकार ढ़क लेती है कि वे अपने अधिकतर समय बार में निकालने लगते हैं । हर बार नशे में आकर वे कहते रहते - "मैं जाऊंगा अभी, तुम मुझे रोक नहीं सकते । तुम घर बता देना मेरे बेटे को कि तेरा बाप चला गया । वह वापस नहीं आएगा । उसे लेने मत आइयों कभी गाँव में... कभी मत आइयों।"[1] लेकिन कभी ऐसा नहीं हो पाता । अपने परिवारवालों की उपेक्षा ने उन्हें इतना तड़पा दिया था कि वे नशे में सड़क के किनारे नाले में ही पड़े रहना पसन्द कर गए ।

बच्चों की उपेक्षा

आज के युग में एक नई परिस्थिति यह बन रही है कि कई बुजुर्गों के बच्चे व्यवसाय और नौकरी के सिलसिले में उनसे दूर अथवा विदेशों में बस जाते हैं तथा उनकी देखभाल केलिए कोई नहीं रहता । संतानों के अपने जीवन में व्यस्त हो जाने के पश्चात् वृद्ध जन न केवल अकेले रह जाते हैं, अपितु यह अकेलापन उन्हें मन को तोड़ भी देता हैं । वृद्ध व्यक्तियों केलिए सबसे अधिक पीड़ाजनक है अपनी ही संतानों द्वारा उपेक्षित रह जाना । बच्चों की इस उपेक्षा और तिरस्कार को वे किसी भी हालत में सह नहीं पाते। इसके कारण वे अपने जीवन में इतने निराशाग्रस्त हो जाते हैं कि आत्महत्या

1. सुदर्शन वशिष्ट, बार में बूढ़ा, विशिष्ट कहानियाँ, पृ. 59

तक कर लेते हैं । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उदासीन होकर वे बच्चों को याद करते रहते हैं और किसी दिन अकेलेपन का दर्द न सह पाने के कारण हृदय फटकर मर भी जाते हैं और किसी को कानोंकान खबर तक नहीं होती ।

'बन्द मुट्ठी' कहानी एक ऐसी अम्मा को हमारे सामने प्रस्तुत करती है जो अपने बेटे के होते हुए भी एक फ्लाट में अकेली रहती है और एकाकीपन की ज़िन्दगी बिताती है । उनका बेटा भी उसी शहर में रहता है लेकिन अम्मा सभी से कहती है कि वह अमरिका में है । अपने बेटे द्वारा उपेक्षित रहने के बावजूद भी उसके प्रति स्नेह और वात्सल्य के कारण अम्मा सभी से झूठ ही कहती है । लेकिन कभी-कभी मायूसी में आकर भावुक हो जाती और कहती हैं - "ये तो अच्छा हुआ, पति ग्रेच्युटी का रुपया और पेंशन छोड गए, जो आसरे के लिए पर्याप्त है । पर क्या जीने के लिए केवल यही चाहिए ।... मरते-खपते बच्चे बड़े करो और अन्त इस पीड़ा के साथ?.... सूर्यास्त की तरफ बढ़ते जीवन सन्ध्या के दौर से गुज़रते हुए परिवार की उपेक्षा का जहर? क्या नियति केवल आँगनभर धूप, खिडकी भर आकाश ही होती है ।"[1] बेटे की उपेक्षा से अम्मा इतनी दुःखी हो जाती है कि एक दिन अपने फ्लाट में अकेली पड़ी दम तोड़ देती है ।

सरला अग्रवाल की कहानी 'दरकते सपने' का बाबा अपना सब कुछ

1. स्वाति तिवारी, बन्द मुट्ठी, अकेले होते लोग, पृ. 72

लुटाकर बेटे को पढ़ाते हैं और उसे काबिल बनाते हैं । लेकिन नौकरी मिल जाने पर वह बाबा को अकेले गाँव छोडकर खुद शहर में बस जाता है और अपनी मर्ज़ी से शादी भी कर लेता है । वह कभी भी अपने बाबा का हाल न पूछता और न उनसे मिलने आता । बेटे की स्मृतियों ने बाबा को इतना व्याकुल कर दिया कि उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया ।अक्सर उनका समय खटिये पर उदासी में गुज़रता । पड़ोसियों के कहने पर वे खुद बेटे से मिलने जाता है तो बहु उन्हें अन्दर आने तक नहीं देती । वह कहती है - "पर मैं तो तुम्हें नही पहचानती, साहब ऑफिस गए हुए हैं । अभी यहीं ठहरो । कुर्सी भिजवा देती हूँ ।उनके आने पर ही कुछ तय होगा ।"[1] बेटे के आने पर वह भी उनके हाल-चाल पूछे बिना शिकायती बन जाता है । बच्चों के बर्ताव से वे इतना दुःखी हो जाते हैं कि टूटे दिल रातों-रात गाँव को चल पड़ते हैं ।

अक्सर माएँ बच्चों के प्रति खासकर बेटों के प्रति अधिक भावुक होती हैं । उन्हें लगता है कि बुढ़ापे में बेटियों से अधिक बेटे ही उनका सहारा बनेंगे । लेकिन जब यही बेटे उन्हें अकेला छोड़ देते हैं तो वह उनकेलिए मृत्यु से भी कम नहीं होता । बच्चों द्वारा उपेक्षित होकर वे अपने-आप को फालतू चीज़ मानने लगते हैं । 'पुत्रवती' कहानी की ताई को अपने बेटों पर बहुत गर्व था । वह अपने बेटों केलिए जी लगाकर काम करती । लेकिन

---

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, दरकते सपने, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 98

उनके सभी बेटे उन्हें ठुकराकर, उन्हें गाँव में अकेला छोड़कर चले जाते हैं। इस प्रकार सात बेटों की माँ एकाकी ज़िन्दगी की पीड़ा भोगती है । गाँव में अकेले पडने पर भी उसे शहर बेटों के पास जाना भी पसंद नहीं है । वह कहती है - "नहीं बिटिया क्या करना है ? यही अच्छी हूँ । चार मनक बोलने को तो हैं । वहाँ तो मुँह बन्द रख-रख के थकान हो जाती,... वहीं जाउँ तो रोटी ही बनाती रहती हूँ।... उसमें गरूर भरा है पति को ही रोटी दे दे तो समझो गंगा नहाए।"[1] ताई के कथन से व्यक्त हैं कि बेटों के साथ दम घुटते ज़िन्दगी बिताने से ज़्यादा उन्हें अकेलेपन की ज़िन्दगी बिताना पसन्द हैं। उनके मुताबिक रिश्तों के बीच अकेले पडने से बेहतर है अपनी ही कोटी में अकेली रहना ।

'प्रतीक्षा' कहानी हमारे सामने एक बूढ़ी अम्मा की उदासी भरी ज़िन्दगी को दिखाती है जो अपने बेटे की प्रतीक्षा में दिन-रात गुज़ारती है । बेटा अपने कामों में इतना व्यस्त हो गया है कि बगलवाले कमरे में पडीं अम्मा से मिले महीनों हो गए । अम्मा को हर बार प्रतीक्षा रहती है कि वह उसके कमरे में आएगा और उसकी हाल-चाल पूछेगा । लेकिन कभी ऐसा नहीं होता । वह देखकर भी अनदेखा करते हुए चला जाता है । माँ का मन इतना उदासा हो जाता है कि वह हर वक्त बेटे के बचपन को याद करती रहती हैं और आहें भरती हैं । अम्मा के ऑपरेशन के वक्त भी वह कागज़

1. स्वाति तिवारी, पुत्रवती, अकेले होते लोग, पृ. 83

में साइन करने समय पर नहीं आ पाता । वह अपनी बहु से पूछती है - "मुन्ना आ गया क्या ? तुम्हारी आहट महसूस की थी मैंने, आज फिर वही जानलेवा पीड़ा उसी उदर में उठ रही है । मैं बन्धनों से मुक्त होनेवाली हूँ तुमने पेपर पर दस्तखत किए पैन रखा और मेरी साँस काल कोठरी की इस पीड़ा से मुक्त हुई । मैं तुम्हारे आने पर आज फिर पीड़ा से छुटकारा पा गई बेटे, मेरे मुन्ना अभी तुम्हारा इन्तज़ार मुझे चिता पर भी रहेगा ।"[1] कहानी की अम्मा वर्तमान आधुनिक 'समूह में एकाकीपन से पीडित सभी बूढ़ों का प्रतीक है। अम्मा के कथन में वे सारे दुःख और दर्द विद्यमान हैं जो वे चाहकर भी अपने बच्चों से नहीं कह पाते हैं । इस प्रकार आधुनिक अणु परिवारों में रहते बूढ़े अपने ही घर में अजनबी बनकर एकाकीपन की ज़िन्दगी बिताकर चल बसते हैं । उनकी मानसिक पीड़ा और तनाव कभी भी नई पीढ़ी की समझ में नहीं आते और यह तब तक चलेगा जब तक ये दोनों पीढ़ी एक दूसरे को नहीं समझेगा ।

आधुनिक समय में और आगे भी, पारिवारिक उपेक्षा और वृद्धों की अलग पड जाने की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही रहेगी । इसलिए बुजुर्गों को परिवार में अपनी प्रतिष्ठा की कमी पर दुःखी होने के बजाय बदलती परिस्थिति के लिए अपने-आप को तैयार करना आवश्यक है । उन्हें अपने हमउम्र लोगों के संगठन और संस्थाएँ बनाकर समय-समय पर आपस में

---

1. स्वाति तिवारी, प्रतीक्षा, अकेले होते लोग, पृ. 132

मिलने और अपने विचारों का आदान-प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए। अपने को किसी काम में व्यस्त रखना मानसिक तनाव को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है । एक दूसरे से मिलना-जुलना, पढ़ना-लिखना, समाज सेवा, घर के छोटे-मोटे काम करना आदि से हमें मानसिक स्वास्थ्य मिलता है । उसी प्रकार मनोरंजन केलिए टेलिविज़न देखना, इनडोर खेलों में लगना और बच्चों के साथ वक्त निकालने से भी मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार कई समस्याओं और चुनौतियों से भरी वृद्धावस्था को भी सामान्य रूप से जिये जा सकते हैं यदि कुछ बातों पर ध्याान दिया जाए तो। वृद्धजनों के अनुभवों और अपार ज्ञान को समाज की भलाई केलिए उपयोग करना चाहिए । उसी प्रकार वर्तमान यथार्थ का सामना करने और उससे घुल-मिलने केलिए वृद्धजनों को भी जागरूक करना चाहिए । ऐसा करने पर वृद्धावस्था एक अभिशाप न रहकर एक अनुग्रह बन जाएगी ।

❖ ❖ ❖

तीसरा अध्याय

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का आत्मसंघर्ष

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का आत्मसंघर्ष

वृद्धावस्था उम्र का ऐसा एक पड़ाव है जहाँ पहुँचकर व्यक्ति के जीवन में एक ठहराव आ जाता है । इस कठिन स्थिति में व्यक्ति के पास बहुत अधिक समय रहता है किन्तु उसके लिए किसी के पास समय नहीं रहता । आधुनिक पश्चिमी संस्कृति की घुसपैठ ने सामाजिक नज़रिए को बहुत ही बदल दिया है । आज की पीढ़ी वृद्ध व्यक्तियों को भौतिक वस्तुओं की तरह मानकर उनका मात्र उपभोग करती है और बाद में उनका उपेक्षा कर देती है। "उसके युवा संबंधी ये मान लेते हैं कि उसने अपना जीवन जी लिया है इसलिए उसके पास कोई आकांक्षाएँ, योजनाएँ शेष नहीं बची है जबकि सत्य यह है कि वस्तुतः यही वह पड़ाव है जब एक व्यक्ति अपनी सभी जिम्मेदारियों से स्वयं को मुक्त पाकर अपने साथ और अपने जीवन जीने का प्रयत्न कर सकता है परंतु विडंबना यह है जब वह ऐसा करना चाहता है तो बहुत बार उसकी अपनी ही संतान उसे उपहासास्पद दृष्टि से देखती है और सहयोग की स्थिति तो दूर वह उसके द्वारा किए गए प्रयासों का सम्मान तक नहीं करती।"[1]

भारतीय समाज में संबन्धों की जडें बहुत गहरी थी । वर्तमान समय में इन संबन्धों में खोखलापन आ गया है । संयुक्त परिवारों के विघटन एवं

---

1. डॉ. श्रीमती प्रेमसिंह व डॉ. रिम्पी सिंह - समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज - पृ. 131

उपभोक्तावादी जीवन-पद्धति के विकास ने वृद्धजनों को सर्वाधिक उपेक्षित बना दिया है । वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ जीवन-प्रणाली बहुत जटिल बन गयी है, वहाँ नई पीढ़ी के पास अपने जीवन पर विचार करने केलिए ही समय नहीं है, वे अपने वृद्ध माँ-बाप केलिए, तो बिल्कुल समय नहीं निकाल पाते । परिवार में अकेले पड जाने से, और आर्थिक स्थिति हीन हो जाने के कारण वृद्ध जन बहुत ही निराश पड जाते हैं और उनका आत्मसंघर्ष भी बढ जाता है । इस प्रकार वृद्धावस्था अपने साथ एक सुनापन, एक खालीपन लेकर आती है ।

जहाँ पाश्चात्य संस्कृति का 'use and throw culture' बुजुर्गों की उपेक्षा का एक कारण बना हुआ है, वहीं दूसरी ओर पीढ़ियों का अंतराल अथवा generation gap' भी उनकी दुर्गति का प्रमुख कारण है । वर्तमान समय का माहौल जिस तरह से नई पीढ़ी की मान्यताओं को बदलता है, उसी गति से पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं को नहीं बदलती । इसका परिणाम यह होता है कि दोनों पीढ़ियों के जीवन-मूल्यों के बीच गहरा अंतराल पैदा हो जाता है । परिणाम यह होता है कि नई पीढ़ी के जीवन मूल्यों और दृष्टिकोण को बुजुर्ग नकारते है और पुरानी पीढ़ी के मूल्यों को मानना नई पीढ़ी केलिए भी कठिन है । यह स्थिति दोनों के बीच दरार खड़ा कर देती है । "फलस्वरूप उनके मन में पाले गए सुनहरे सपने भंग होने लगते हैं और

सपने टूटने के साथ ही स्वयं वृद्ध भी टूटने लगते हैं । परिणामतः सामने आते है ऐसे विघटन जिसका स्पष्ट कारण उनकी समझ में नहीं आता, अतः घोर निराशा उनको व्यापकर जीवन के प्रवाह से परे धकेलती जाती है ।"[1]

समकालीन कहानी वृद्ध जनों के उपेक्षा भरे जीवन को उसके विभिन्न पहलुओं के साथ रेखांकित करती है । वृद्धावस्था के अकेलेपन, पीढियों के बीच का दरार, मूल्यों का विघटन, परिवार में उपेक्षित होना, आदि को समकालीन कहानीकारों ने गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है ।

नयी पीढ़ी और वृद्धों के बीच की दरार

परिवार में माँ-बाप और बच्चों के बीच का संबंध ही मानव जीवन का आधार होता है । संबन्धों से कटकर कोई जी नहीं सकता है । लेकिन वृद्धावस्था में जब व्यक्ति ऊर्जा विहीन हो जाता है तब यही संबंध उसे भारी पड़ता है । वर्तमान समाज की नई पीढ़ी अधिक सुख-सुविधाएँ चाहती है और उसे जुटाने के लिए वे भाग-दौड कर रहे है । इस कारण वे अपने माँ-बाप केलिए बिलकुल समय नहीं निकाल पाते । इसके अलावा सामाजिक मूल्यों में होनेवाला परिवर्तन भी दोनों पीढ़ियों के बीच दरार पैदा कर रहा है। "पहले समाज में माता और पिता को देवता के समान माना जाता था परन्तु धीरे-धीरे पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्यों ने ले ली और सामुदायिकता की

1. विमला लाल - वृद्धावस्था का सच - पृ. 42

भावना के स्थान पर व्यक्तिवाद पनपने लगा और युव पीढ़ी ने समाज के दबाव और डर को भी धीरे-धीरे मानने से इनकार कर दिया । पहले संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्धों को एक स्थान होता था उन्हें सम्मान मिलता था, उनके कुछ कहने का एक मूल्य होता था, परंतु आज जब एकल परिवार प्रणाली ही मुख्य रूप से समाज में दिखाई देती है, उसमें बडे बुजुर्गों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है।"[1]

सुदर्शन वशिष्ठ की कहानी 'बार में बूढ़ा' संबन्धों के बीच की संबन्धहीनता को दिखाती है । यह अई डी नामक वद्ध की कहानी बताती है जो रिटायरमेंट के बाद अपने बेटे, बहू और पोतों के साथ रहता है । पत्नी की मृत्यु ने उन्हें बिलकुल अकेला बना दिया था । बेटा उनपर ध्यान नहीं देता और बहू तो गालियाँ बकती थी । "अब कोई नहीं था सुननेवाला। बेटा अनसुना करता था । बहू तो ठहरी पराई जाई । कुछ मूँह से निकल जाए तो पटर-पटर अंग्रेज़ी बोलती ।"[2] वृद्धावस्था में जर्जर बूढी देह अपने संबन्धों में उष्मीय अपनापन खोजती है । लेकिन उसे उपेक्षा ही मिलती है क्योंकि नई पीढ़ी उन्हें बेकार का सामान समझकर हाशिए पर धकेल देते हैं ।ऐसी स्थिति में उनके मन दर्द से भर जाता है और संबन्धों के प्रति उदासीन होकर वह स्वयं अपनी ही उपेक्षा करने लगता है । इसी मानसिकता के कारण अई डी भी शराब को अपना दोस्त बनाता है और रोज़ बार में पीने जाता है । उसे

1. डॉ. श्रीमती प्रेमसिंह व डॉ. रिम्पी सिंह - समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज - पृ. 140
2. सुदर्शन वशिष्ट - बार में बूढ़ा, विशिष्ट कहानियाँ - पृ. 55

अपने घर से नफरत है, और बच्चों से डर है । नशे में आकर वे कहते है - "भैया तुम कौन हो । तुम हो कौन ! मेरी बहू हो तुम । तुम तो भरे-पूरे आदमी हो । फिर बहू की तरह हरकत क्यों करते हो जनानियों वाली ।"[1] बच्चों द्वारा अपना तिरस्कार और उपेक्षा के कारण वह अपने गाँव और बचपन को याद करना है । वे वापस अपने गाँव तो जाना चाहते हैं लेकिन उनकेलिए यह मूमकिन नहीं था और वे नशे में रोड पर ही पडे रहते हैं ।

अमृत राय की कहानी 'आँखमिचौनी' ज़िन्दगी, वृद्धावस्था और मृत्यु के बीच की आँखमिचौनी की कथा कहती है । वृद्धावस्था ऐसा एक पड़ाव है जहाँ पहूँचकर व्यक्ति अपने को मूल्यहीन और अर्थहीन मान लेता है । इस कहानी की बूढ़ी माँ को हर किसी से शिकायत है । उसकी शारीरिक पीडा और मानसिक संघर्ष के कारण वह बहुत व्याकुल हो जाती है । अकेलापन अन्दर ही अंदर घुटने के कारण वह शिकायती बन जाती है । वह कहती है- "भगवान उठा भी नहीं लेता... अपनी साँसत, औरों की साँसत... कै दिन से कहके रक्खा है... एक कान से सुना, दूसरे कान से निकाल दिया... वैदजी ने कहा था रोज़ आप चूंरन लिया कीजिए..... सब जानते है कि मुहताज है... भगवान उठा भी नहीं लेता... छुट्टी मिले।"[2]

अक्सर वृद्धजनों की इस मानसिक स्थिति को परिवार के अन्य सदस्य समझ नहीं पाते है । वे समझ बैठते हैं कि सब कुछ कर देने के

1. सुदर्शन वशिष्ट - बार में बूढ़ा, विशिष्ट कहानियाँ - पृ. 59
2. (संपादन) गिरिराज शरण, आँखमिचौनी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 15

बावजूद भी इन लोगों की शिकायतें नहीं रुकती । यह दृष्टिकोण परिवारवालों को उनके खिलाफ कर देता है । इस प्रकार एक संघर्ष का माहौल पैदा हो जाता है । बूढी माँ की शिकायतों से ऊबकर आभा कहती है - "भाड में जाय ऐसी ज़िन्दगी-दिन भर फिरकिनी की तरह नाचती रहती हूँ... इतना खयाल रखती हूँ बूढा के आराम का लेकिन इनके तेवर जब देखो मैले के मैले..... लेकिन उसके बाद भी अपनी बेटी अपनी बेटी है और बहू तो बहू है ।"[1]

पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच की यह बहुत बडी समस्या है कि उनके चिन्तन और विचार मेल नहीं खाते । दोनों अपने-अपने विचारों में अटके रहते हैं क्योंकि दोनों केलिए अपने-अपने दृष्टिकोण सही है । गिरिराज शरण अग्रवाल की कहानी 'बूढ़ा ज्वालामुखी' के रायबहादूर अपनी वृद्धावस्था में बिल्कुल अकेले हैं । उनकी बेटी ने एक नीच जाति के आदमी से शादी कर ली जिसके कारण रायबहादूर ने उसे घर से निकाल दिया और उनका बेटा भी नौकरी के वास्ते घर से दूर रहता है उस बडे से घर में उनका एकमात्र दोस्त उनका कुत्तिया है । इस सुनेपन में भी वे अपनी मान्यताओं से हटने केलिए तैयार नहीं हैं । बेटा उन्हें समझाने की कोशिश करता है । वह कहता है - "क्या हुआ जो उसने एक ऐसी जाति के युवक से प्रेम-विवाह कर लिया जिसे आप नीच समझते हैं । आप लोग अगर अब भी अपनी मान्यताएँ

---

1. (संपादन) गिरिराज शरण, आँखभिचौनी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 15, 16

नही बदलेंगे तो आज की पीढ़ी से उनका रिश्ता बिल्कुल छूट जाएगा ।"[1] लेकिन इसके उत्तर में वे कहते हैं - "मूर्ख, मुझे सबक पढ़ाने चला है । इन बूढ़ी आँखों ने दुनिया देखी है ।"[2] कहानी के अंत में जब उनका एकमात्र सहचारी कैटी अपना जंजीर तोडकर मोहल्ले के कुत्तों के साथ घूमती है तो रायबहादूर उसे भी मार डालता है और इस प्रकार अपना बाकी की ज़िन्दगी तनहाई और प्रतीक्षा में गुज़ारता है कि खुशियाँ लौट आएँगी। लेकिन कभी यह मानने को तैयार नहीं है कि उनके कठोर स्वभान ने ही उन्हें अकेला बनाया है ।

वृद्धावस्था तक पहूँचते ही वृद्धजनों को घोर कठिनाइयाँ और बेबसी भुगतनी पड़ती हैं । अतीत में हमारे देश में जो संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी, वहाँ बुजुर्गों की इन समस्याओं को समझा जाता था । इसका समाधान करने केलिए तरह-तरह के उपाय भी लिये जाते थे । उन दिनों वृद्धों का अपमान या अवहेलना करने का साहस नई पीढ़ी या परिवार के सदस्यों के नहीं रहा । तब किसी भी वृद्ध को असहाय वृद्धों की तरह घर की दहलीज के बाहर सड़क पर खड़े होने की आवश्यकता नहीं रहती थी । लेकिन आज के समय में स्थिति बदल गई है । आज की पीढ़ी भौतिकवादी लालसा और स्वार्थ से भरी है । उनकेलिए वृद्ध व्यक्ति 'आउट डेटड' है । आज की

---

1. (सं) गिरिराज शरण, बूढा ज्वालामुखी, वृद्धावस्था की कहानियाँ - पृ. 30
2. वही - पृ. 30

अपसंस्कृति और विकृत जीवन शैली के कारण बुजुर्गों के प्रति जो सम्मान और प्यार होना चाहिए, वह बिल्कुल न के बराबर है और आज का समाज तो केवल उन्हें उपहास की दृष्टि से ही देखती है ।

शरद सिंह की कहानी 'बंद घड़ी' की वृद्ध औरत घर पर बिल्कुल अकेली है । घर का और बाहर का दोनों काम उसे खुद संभालना पडता है। बिजली की बिल भरने केलिए लाइन पर खड़ी अम्मा को धकेलकर एक नौजवान बीच में घुस जाता है । अम्मा के डाँटने पर वह कहता है - "अरी डोक्को ! पटर-पटर ने करो ! तुमें काए की जल्दी है ? तुमाए लाने तो बस जेई एक काम है, लगी रहो शाम तक लाईन में ।"[1] इस बात पर वहाँ खडे अन्य लोग भी हँस पडते हैं । अपमानित अम्मा निराश होकर वापस घर लौट जाती और आगे कभी बिल भरने नहीं जाती ।

राज नारायण की कहानी 'कुत्ता' के वृद्ध बाप ने बहुत मेहनत और कष्ट उठाकर अपने तीनों बेटों को बडा किया । उनकेलिए ज़मीन और खेत खरीदे । उन्होंने यह माना कि वृद्धावस्था में बेटे उनके बहुत सम्मान करेंगे और उनका ख्याल रखेगें । लेकिन ऐसा नहीं हुआ । विमला लाल ने 'वृद्धावस्था का सच' नामक अपनी पुस्तक में कहा है - "अगर घर का वृद्ध व्यक्ति किसी तरह से आज भी परिवार केलिए लाभप्रद लगता है तो कुछ हद

---

1. बंद घडी, नई धारा, अप्रैल-मई 2010, पृ. 95

तक उनकी देखभाल भी हो जाती है और एक सीमा तक मान-सम्मान भी उसे मिलता रहता है, वरना उसे 'आउट ऑफ डेट' घोषित करके व्यर्थ वस्तुओं की श्रेणी में डालते देर नहीं लगती ।"[1] इस कहानी के पिता की भी यही स्थिति है । बेटों केलिए उन्होंने पूरी ज़िन्दगी बरबाद कर दी थी । लेकिन वृद्धावस्था में बेटा बोलता है - "बुरा न मानियेगा बाबूजी ! आपने हम भाइयों को ठीक से नहीं पढ़ाया, खेती-बाडी के गंदे-मुश्किल कामों में जोते रखा । इसलिए रह गए हम सब सिर्फ साक्षर होकर । नेरन मामा की तरह सर्विस के लायक नहीं बने । हलजोतवा आप हैं, तो हमें भी वैसा ही बना दिया।"[2]

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू की स्थिति भी कुछ भिन्न नहीं है । बरसों बाद नौकरी से रिटायर होकर वे घर पहूँचे है । लेकिन उनका घर वापस आना किसी को पसन्द नहीं हुआ । उन्होंने पाया कि घर का माहौल बिलकुल बिखरा पडा है । सब अपने में केन्द्रित है । पिता की हर बात में हस्तक्षेप करना बेटे और बेटी को बिल्कुल पसन्द नहीं आता। वे अपनी माँ से कहते हैं- "अम्मा, तुम बाबूजी से कहती क्यों नहीं ? बेठे-बिठाये कुछ नहीं तो नौकर ही छुडा दिया।... बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहे । हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं ।"[3] बच्चों की इस मानसिकता को गजाधर बाबू बहुत वेदना के साथ अपनाते हैं और वापस किसी मिल में काम

1. विमला लाल - वृद्धावस्था का सच - पृ. 13
2. कुत्ता, नई धारा , अप्रैल-मई - 2010, पृ. 116
3. (सं.) गिरिराज शरण, वापसी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 25

के वास्ते वहाँ से चले जाते हैं । विडंबना यह है कि उनका जाना किसी केलिए भी दु:ख की बात नहीं है यहाँ तक कि उनकी पत्नी केलिए भी ।

इन कहानियों के अलावा 'गोविन्द मिश्र के 'घेरे', 'नरेन्द्र कोहली' के 'शटल', यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द' की 'अपंग', सैली बलजीत की "अपने घरौंदे से दूर" आदि कहानियों में भी वृद्धजन और युवपीढ़ी के बीच की दरार का मार्मिक चित्रण हुआ है ।

मूल्यों का विघटन और बच्चों की उपभोग संस्कृति

हमारी भारतीय परंपरा की यह विशेषता है कि उसकी संस्कृति मूल्यों पर आधारित रही है । यहाँ संबन्धों को मुख्यत: पारिवारिक संबन्धों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था । घर के बुजुर्ग परिवार के नियम और कानून रचते थे और अन्य जन बिना प्रश्न किए उसका पालन करते थे । तब घर के बडों एवं बुजुर्गों को आदर और सम्मान के साथ देखा जाता था । यह सब तब की बात है जब समाज में माता और पिता को देवता के समान माना जाता था । लेकिन वर्तमान समय में धीरे-धीरे पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्यों ने ले ली है और सामुदायिकता की भावना की जगह पर व्यक्तिवाद की भावना आ गई है । आज का जीवन त्याग और संयम का जीवन न होकर वैभव और विलासिता का जीवन है । यहाँ संबन्धों की जड़ों में एक प्रकार का खोखलापन आ गया है । आज की युव पीढ़ी के लिए पुरानी पीढ़ी इतनी

अपमानजनक बन गई है कि उनका उठना बैठना भी इन लोगों से नियंत्रित है । भीष्म साहिनी के 'चीफ का दावत' कहानी इसकेलिए उत्तम उदाहरण है। स्वाति तिवारी ने अपनी पुस्तक 'अकेले होते लोग' में ठीक ही लिखा है कि - 'घर का ड्राइंग रूम सिर्फ युवा वर्ग के मिलने वाले और यार दोस्तों को बैठाने, बैठक जमाने या किटी पार्टी केलिए सजाए-सँवारे जाते है - पर बुजुर्गों के दोस्तों व परिचितों की उपेक्षा होने लगती है और कई बार तो यह उपेक्षा चाय के प्याले से भी उपेक्षित कर दी जाती है ।"[1]

युवा पीढ़ी की इस उपभोगी मानसिकता और विघटित मूल्यों का चित्रण समकालीन कहानियों में भली-भाँति हुआ है । यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानी 'अपंग', एक अपंग बूढे बाप की कहानी है जिसे अपनी बेटी के अनैतिक संबन्धों और उपभोगिता के सामने अपंग होकर ही खडा रहना पडता है । पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने बेटी को बहुत लाट-प्यार से पालकर बडा किया । वे दीप्ती को आई.ए.एस बनाना चाहते थे । लेकिन बेटी की रुचि इन सब में नहीं रही । वह विनोद नामक लडके से संबन्ध जोडती है । पिता की गैर मौजूदगी में वह उसे घर बुलाती है । जब पिता को इस बात का पता चलता है तो वह लापरवाही के साथ कह देती है कि हम लोग एग्जाम की तैयारियाँ कर रहे थे । लेकिन लडके की घबराहट और घर की स्थिति से पिता को सब कुछ साफ व्यक्त हो जाता है । "उसने देखा

1. स्वाति तिवारी - अकेले होते लोग - पृ. 21

कि एक गोरा-चिट्टा लड़का बैठा है । उसके बाल बिखरे हुए है । उसकी कमीज़ के बटन जल्दबाजी में ढ़ंग से बंद नहीं हुए है ।" "फिर बिस्तर पर पड़ी सलवटें।"[1]

बाद में दीप्ती अपनी मर्जी से नरेन नामक आदमी से शादी करती है। बेटी और दामाद मिलकर उनकी सारी कमाई को नष्ट करते है। दीप्ती नरेन से तलाक लेती है और अब बूढे बाप के साथ रहती है । इस प्रकार बूढापे में उनका सहारा बनने के बजाए स्वयं उनपर बोझ बन जाती है । इस कहानी ने खूबी से युव पीढ़ी की मूल्यहीनता और वृद्ध व्यक्ति की मज़बूरी को अंकित किया है ।

आज की नई पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करनेवाली है। वे हमारी सभ्यता और संस्कृति को तुच्छ और पुराना मानकर उसे ठुकराते हैं । इसके परिणामस्वरूप बूढ़े माँ-बाप घर में उपेक्षित रहा जाते हैं । मृदुला गर्ग की कहानी 'लौटना और लौटना' में युवकों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और विदेशी सभ्यता के अनुकरण के कारण टूटते भारतीय परिवार का चित्रण बखूबी से किया गया है । सालों बाद हरीश अमरिका से भारत लौटता है । वह अपने माँ-बाप की इकलौता संतान है । उसका व्यवहार और फैशन माँ को बिल्कुल पसन्द नहीं आता, तो पिता कहता है - 'लडका

---

1. सं. डॉ. शीतांशु भारद्वाज, वृद्धमन की कहानियों, पृ. 15

अमरीका से आया है, तहजीब लियाकत सीखकर, रोशल ख्याल लेकर, हमारे गँवारू, पिछडे तौर-तरीके उसे कैसे रास आएगे ? पता है हमसे अच्छी ज़िन्दगी तो अमरीका के कुत्ते बसर करते है ।"[1] पिता हरीश की हर हरकत के साथ मज़बूरी से समझौता करने केलिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि उन्हें प्रतीक्षा रहती है कि बेटा उनकी देखभाल करेगा । हरीश की शादी को लेकर जब घर पर चर्चा होती है, तब वह खुलकर अपने पिता से कहता है कि लडकी डाक्टर तथा 'सेक्सी' होनी चाहिए । इस तरह लडकी के यौन गुणों के बारे में बुजुर्गों के सामने कहने केलिए वह बिल्कुल हिचकता नहीं है। यह पाश्चात्य संस्कृति की देन है । विदेशों में माता-पिता के सामने कई संबन्धों में लगता और अश्लील होना साधारण सी बात है । लेकिन हमारी परंपरा और संस्कृति यह नहीं है । बच्चें हमेशा बड़ों के सामने शिष्टता से रहे हैं । परन्तु वर्तमान समाज में इसी शिष्टता की कमी है जिसके कारण वे अपने मूल्यों से हटे हुए हैं और यही विघटित परिस्थिति उन्हें वृद्ध माँ-बाप से भी अलग कर देती है । पुत्र के अनुचित व्यवहारों के कारण यहाँ भी बाप-बेटे का संबन्ध टूट जाता है । बाद में हरीश पत्नी को लेकर वापस विदेश चला जाता है । वह अपना नया मकान भी किराए पर दे देता है और हर महीने रुपए बैंक में अदा करने का प्रबन्ध भी कर देता है । बूढ़े माँ-बाप अकेले अपने पुराने मकान में ही पडे रहते हैं । पुत्र के बरताव से उन्हें धक्का तो

1. मृदुला गर्ग, लैटना और लैटना, कितनी कैदे क. सं. पृ. 61

लगता है लेकिन लाचार माँ-बाप कुछ कर नहीं पाते और अकेलेपन में ही अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं ।

आधुनिक युवा-पीढ़ी की भौतिक-विलासिता के सामने मज़बूरन खड़ी एक माँ का चित्रण किया है हृदयेश ने अपनी 'माँ' कहानी में । माँ के दोनों बच्चे बेटा और बेटी, पढ़े-लिखे और नौकरी पेशे है । दोनों युवापीढ़ी के प्रतीक हैं । माँ कुछ दिन अपनी बेटी के साथ रहती है तो कुछ दिन अपने बेटे के साथ । लेकिन उनका मन कहीं नहीं टिकता क्योंकि एक प्रकार की कृत्रिमता थी दोनों परिवार में । बच्चे अपने कामों में व्यस्त रहते थे और कभी अपनी माँ केलिए समय नहीं निकाल पाते । लेकिन माँ इस बात से हमेशा खुश रहती कि उनके बच्चे खुश हैं । माँ की खुशी अधिक दिन नहीं टिक पाती जब उसे पता चलता है कि पत्नी और बच्चे होते हुए भी बेटे का किसी और से संबन्ध है । शीला माँ से कहती है - "बाहर कमरे में जाकर देखो । तेरा सपूत किसी छिनाल को साथ लाया है । मुझे आज एक सहेली के यहाँ जाना था । सोचा होगा कि मैं घर पर नहीं हूँ तो यारिन को ले चलकर मौज मारूं । अब मेरी छाती पर मूंग दली जाएगी।"[1] बेटे को इस बात की बिल्कुल चिन्ता नहीं रहती है कि बूढ़ी माँ घर पर मौजूद है । वह निर्भय होकर ही अपने यारिन को लेकर घर आ जाता है । एक ज़माना रहा था जब बच्चे अपने पति या पत्नी को लेकर भी बुजुर्गों के सामने यारानी नहीं करते थे

1. माँ, हृदयेश, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 556

क्योंकि वह मूल्यों और शिष्टाचार के विरुद्ध था । किन्तु अब स्थिति बिलकुल बदल गई है । आज की पीढ़ी बडों के सामने कुछ भी बेशरमी करने केलिए तैयार है, चाहे उन्हें बुरा लगे या नहीं लगे । कहानी की माँ दुःखी होकर बेटी के यहाँ चली जाती है । वहाँ भी उन्हें कुछ खास खुशी नहीं मिलती । बेटी अपनी मर्जी से आती-जाती है । माँ के पूछने पर वह कहती है - "माँ, मैं पढ़ी-लिखी हूँ । अट्ठाईस साल की हो गई हूँ । अपना भला-बुरा समझने की मुझमें अक्ल है । तुझे मेरी चौकीदारी करने की ज़रूरत नहीं।"[1] माँ को अधिक चोट तब पहूँचती है जब वे देखती हैं कि अविवाहित बेटी के साथ कभी कोई युवक आता है तो कभी कोई । माँ को एक युवक पसन्द आता है और वह बेटी से शादी केलिए कहती है । तब बेटी कहती है "माँ, अमर के घर पर एक मज़बूत काठी की औरत है और एक बच्चा। उस औरत ने सुन लिया तो मुझे ही नहीं तुझे भी मार लगाएगी।"[2] अब माँ का दिल बिलकुल टूट जाता है । कुछ दिन बाद वह वापस बेटे के पास चली जाती है । यहाँ बच्चों की इस अश्लील मानसिकता को जानते हुए भी माँ उनके साथ ही रहने केलिए मजबूर है क्योंकि वृद्धावस्था में उनका कोई और सहारा नहीं है जिसपर वे निर्भर कर सके ।

संबन्धों के बीच का खोखलेपन के दिखानेवाली एक उत्तम कहानी है उषा महाजन का 'अब्बूजी'। बूढ़े माँ-बाप बच्चों केलिए कैसे उपभोगी वस्तु

1. माँ, हृदयेश संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 558
2. वही - पृ. 560

बने रहते हैं और उनकी मृत्यु के उपरान्त भी उनके प्रति बच्चों की जो मानसिकता है इसका अच्छा चित्रण इस कहानी में हुआ है । कहानी में अब्बूजी के 'चौथे' केलिए सभी बच्चे इकट्ठे हुए हैं । भरे पूरे परिवार के रहते हुए भी उनकी मृत्यु नौकर की गोदी में हुई थी । चौथ की संध्या में घंटों भजन-गायन का आयोजन बड़े बेटे ने किया है । सभी कार्य योजना वश किया हुआ है । आमंत्रित लोगों को आश्चर्य है कि इतने बूढ़े बाप के गुज़रने पर बच्चों को इतना गम क्यों है । लेकिन उनके दुःख का असली कारण तो कुछ और ही था । "खैर, अब दुःख का आलम यह था कि बड़ा ही नहीं, दूसरे दोनों बेटे और बहुएं भी चाह रहे थे किसी तरह भजनों का यह एक घंट गुजरे, चौथे की रस्म की औपचारिकताएँ पूरी हों और वे आपस में बातचीत करे, अपना गम बाटे और आगे की कार्रवाई का सोचें।"[1] आज रिस्तों के बीच एक प्रकार की औपचारिकता आ गई है । लोग कुछ भी करते हैं दूसरों को दिखाने केलिए अथवा यह सोचकर कि न करने पर लोग क्या सोचेंगे । कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने पैसे के बडप्पन को दिखाने केलिए कार्य करते हैं । किसी को भी इस बात का ध्यान नहीं रहता कि ये सभी रस्में किस केलिए और क्यों किया जा रहा है । आजकल मां-बाप की मृत्यु के तुरन्त बाद ही बच्चों को इस बात की जल्दी रहती है कि कैसे भी बटवारा हो जाए और जल्द से जल्द अपना-अपना हिस्सा लेकर वापस चले जाए । और

1. उषा महाजन, अब्बूजी, सच तो यह है, पृ. 28

उनका गम तब और भी बढ़ता है जब उन्हें पता चलता है कि किसी एक को अधिक हिस्सा मिला है । चैथे का रस्म निभाकर सब अपने गम बाँटते हैं कि अब्बूजी ने अपना मकान वृद्धाश्रम के नाम कर दिया है । बहुओं को इस बात का दुःख है कि माँ की मृत्यु पर भी उन्हें कुछ नहीं मिला था और अब अब्बूजी के गुज़रने के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ ।

एक ज़माना रहा था जब घर के बड़ों को ईश्वर के समान आदर और सम्मान के साथ देखा जाता था । उनके आगे ज़बान उठाने केलिए भी युवा पीढी डरती थी । वे जो चाहते थे उसके मुताबिक परिवार चलता था । लेकिन अब घरों में युवा-पीढ़ी हुकुम चलाती है और बूढे जन चुपचाप उसका पालन करते हैं और अगर इसका विपरीत हुआ तो उन्हें डाँटा जाता है, यहाँ तक कि पीटा भी जाता है । निस्सहाय माँ-बाप सब कुछ सहते हैं क्योंकि इस वार्धक्य में और कोई चारा भी नहीं होता ।

भगवतीशरण मिश्र की कहानी 'मुक्ति' का बूढ़ा बाप अपने पुत्र और बहू से डरकर अपनी शेष ज़िन्दगी बिता रहा है । वे हमेशा खामोश ही रहते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि कुछ बोलने से कोई गड़बड़ न हो जाए और बेटा उनकी पिटाई करे । लेखक को आश्चर्य होता है जब वह बूढ़ा उनसे कहता है कि - "वे पूछने पर निगरानी रखते है । कोई आस-पास का भी सुनकर उन तक हमारी बातों को पहूँचा देगा तो वे मेरी पिटाई करेंगे ।"[1]

1. भगवतीशरण मिश्र, मुक्ति, नई धारा, अप्रैल - मई 2010, पृ. 90

पश्चात्य संस्कृति की अंधा अनुकरण करते एक परिवार में उपेक्षित पिता की कहानी कहती है निरुपमा राय की 'चलो एक बूढ़े की कथा सुनते है' कहानी । घर के छोटे बच्चे 'फादर्स डै' मना रहे हैं और अपने पापा को गिफ्ट दे रहे है । यह देखकर बूढ़े बाप को ताज्जुब होता है कि वे उस परिवार में उपेक्षित पडे हैं और उनकी ओर उनका बेटा मूड़कर भी नहीं देख रहा जबकि अपने बच्चों के व्यवहार' पर भावविभोर हो रहा है । आजकल की पीढ़ी की यही हालत है कि अर्थ को समझे बिना ही वे वह सब कुछ करते हैं जो दूसरे लोग करते हैं । हमारे यहाँ न 'फादर्सडे' है मनाया जाता था, न 'मदेर्स डे' लेकिन अपने वृद्ध माँ-बाप के ख्याल सब रखते थे । उनको प्यार और ध्यान देने केलिए किसी दिवस की ज़रूरत नहीं थी । वे हर दिन अपने बच्चों केलिए 'स्पेशिल' थे । इस कहानी में नई पीढ़ी का आडंबरप्रियता को भी दिखाया गया है । बूढ़ा बाप घर पर एक छोटा सा मंदिर चाहता था । लेकिन बेटे को मंदिर बनाने केलिए स्थान नहीं मिला, जबकि वहाँ 'बार' बनाया गया था । "बेटे ने घर पर ही 'बार' बना रखा है.. शीशे की नक्काशीदार अल्मारियों में भांति-भांति की बोतलें सजी है... और बच्चे कार्टून चैनलों में जीवन के वास्तविक सुख के सन्धान में रत रहते है ।"[1] बूढ़ा चाहता है कि सब मिलकर पूजा पाठ करे लेकिन सब अपने-अपने कार्यों में ही व्यस्त रहते हैं और कोई समय नहीं निकाल पाते ।

---

1. निरुपमा राय, चलो एक बूढ़े की कथा सुनते हैं, नई धारा, अप्रैल -मई 2010, पृ. 144

इस कहानी के वृद्ध की स्थिति यह है तो सूर्यबाला की कहानी 'निर्वासित' में बूढ़े बाप को चेतावनी दी जाती है कि आइंदा से वे बैठक में न बैठा करे क्योंकि वहाँ बेटे के दोस्तों को शराब वगैरह पीना है । राजेन बाबूजी से कहता है - "बाबूजी, शाम को मेरे दोस्त वगैरह आते हैं न, तो प्लीज आप अंदर आ जाया कीजिए । असल में उन्हें ड्रिंक्स वगैरह चाहिए होती है, स्मोक भी करना चाहते हैं । आप बुजुर्ग ठहरे, आपके सामने झिझकते हैं ।"[1] आज बुजुर्गों की स्थिति यह बन गई है कि उन्हें अपने ही घर में यह बताया जाता है कि कहाँ बैठना है और कहाँ नहीं, क्या करना हैं और क्या नहीं । इस प्रकार गुलामी की ज़िन्दगी बिताने केलिए बाध्य हो गई है पुरानी पीढ़ी । कोई यह भी नहीं सोचता कि इस व्यवहार से उनपर क्या बीतता है ।

उदय प्रकाश की कहानी "छप्पन तोले का करधन' में एक बूढ़ी दुर्बल माँ की मृत्यु का मार्मिक चित्रण हुआ है । उनकी अन्तिम श्वास तक उनके बच्चे करधन पाने केलिए उनसे झगडते रहे । आजकल के लोग वृद्ध माँ-बाप को अपने साथ यह सोचकर रहने देता है कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी सारी संपत्ति उन्हें मिल जाएगी । इसकेलिए वे उनकी अच्छी देख-भाल भी करते हैं । लेकिन धीरे-धीरे जब उन्हें पता चलता है कि इन बूढ़ों के पास कुछ खास नहीं है तो उनकी उपेक्षा की जाती है । इस कहानी की बूढ़ी माँ

1. सूर्यबाला, निर्वासित, इक्कीस कहानियां, पृ. 196

एक अंधेरे कमरे में बन्द है जिन्हें बीच-बीच में आवाज़ देकर देखा जाता है कि बूढ़ी जिन्दा है कि मरी हुई । माँ जब अन्तिम सांस ले रही होती है तब बहू उसके सेवा करने के बजाए कहती है - "यही वक्त है । अभी बुढ़िया बता दे तो बता दे, वरना पता नहीं कब ये साँस छोडकर चल बसे।"[1] इस कहानी के द्वारा लेखन ने वर्तमान नई पीढ़ी की अपने वृद्ध माँ-बाप के प्रति जो प्रतिक्रिया है, उसे ही दिखाने की कोशिश की है ।

कमल कपूर ने अपनी कहानी 'अम्मा का चश्मा' को हास्यास्पद ढंग से चित्रित किया है । जबकि इस कहानी के पीछे वर्तमान समाज की मूल्यहीनता और पुरानी पीढ़ी की ओर जो अवहेलना है उसे दर्शाया गया है। अम्मा अपने घरवालों केलिए बहुत ही प्यारी थी । उनकी मृत्यु सभी केलिए खासकर उनके छोटे बेटे केलिए असहनीय रहा । उन्होंने अपनी अम्मा की गोल-गोल चश्मा को बडे आदरपूर्व पूजाघर में अम्मा की तस्वीर के पास रख दी थी । सालों बाद जब लेखिका अपने चाचा के घर पहूँचती हैं तो वे बताते हैं कि अम्मा की आत्मा घर की एक 'चीज़' में उतर आई है। वे देखती हैं कि एक छोटी-सी चौकी पर एक बडी-सी विदेशी बिल्ली अम्मा का चश्मा लगाए बैठी है । चाचा कहता है- "देखा बेला, इसकी आँखें बिल्कुल तेरी दादी जैसी हैं, उन्हीं के चश्मे के पीछे से झांकती हुई! है ना पक्की तेरी दादी?"[2] इस कहानी के ज़रिए वर्तमान समाज के विघटित मनोभाव को

1. उदयप्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ और अन्य कहानियाँ, पृ. 59
2. कमल कपूर, अम्मा का चश्मा, अम्मा का चश्मा, पृ. 123, 124

दिखाया गया है । मानवीय संबन्धें इतना यांत्रिक बन गये हैं कि रिश्तों का कोई अर्थ ही नहीं रहा । मरे माँ-बाप पर भी हंसी-मजाक किए जाते है । कोई नहीं समझता या समझना चाहता कि इन लोगों से अपना क्या संबन्ध है या क्या संबन्ध रहा है । अपनी ज़रूरतों को पूरा करने केलिए इस्तेमाल किया गया और बाद में उनका मज़ाक किया गया है ।

सैली बलजीत की कहानी "अपने घरौंदे से दूर' कहानी के पिता की स्थिति भी कुछ हटकर नहीं है । अपना एकलौता बेटा गणेशी, जिसे उन्होंने लाट-प्यार देकर पाल-पोसकर बडा किया, वह उन्हें अपने बुढ़ापे में गाली देकर घर से निकाल देता है । बीमार बाप को संभालना वह नहीं चाहता । वह कहता है - "मर जाओगे तो कौन-सा भूचाल आ जाएगा, कुत्ते ?"[1] इस प्रकार अच्छे भले 'बाप' से वह बेटे केलिए 'कुत्ता' बन जाता है । यह युवा पीढ़ी कभी यह नहीं समझती कि एक समय ऐसा भी आएगा जब बुढ़ापे का सामना करना पडेगा और उनकी स्थिति भी इससे बदतर होगी ।

घर-परिवार में उपेक्षा और अधिकारों से वंचित होना

वर्तमान समय में वृद्धजन अलग-अलग से होते जा रहे हैं । वे अपने घर-परिवार में ही अपने आप को उपेक्षित महसूस करते हैं । परिवार में

---

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, अपने घरौंदे से दूर, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 20

जितने भी लोग शामिल हैं, सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते हैं । बेटों को बाहर का और घर का, दोनों कार्य संभालना पडता है, बहुएँ रसोई में व्यस्त रहती हैं और बच्चे अधिकांश समय पढाई और कार्टून में गुज़ारते हैं। ऐसी स्थिति में घर के बुजुर्ग बिल्कुल अकेले रह जाते हैं और खुद को उपेक्षित महसूस करते हैं ।

पुरानी पीढ़ी ने अर्थपूर्ण जीवन जिया है, और बहुत कुछ समझा है । वे अपने इन अनुभवों को नई पीढ़ी के साथ बाँटना चाहते हैं । लेकिन आज का समय इतना तेज़ और जटिल है कि युवा-पीढ़ी इनकेलिए समय ही नहीं निकाल पाते या निकालना चाहते । अत्: वे स्वयं को पराजित का अनुभव करते हैं । समकालीन कहानियों में वृद्ध-जनों की यह दशा खूब-ब-खूब चित्रित है ।

दयानन्द अनन्त की कहानी सीमेण्ट में 'उगी घास' कहानी के पाण्डेजी अपने घर-परिवारवालों से बिल्कुल उपेक्षित है । बाहर से देखने पर सब कुछ ठीक-ठाक लगता है । उन्होंने बहुत पैसे कमा रखे हैं । लोग उन्हें कंजूस ही मानते हैं । लेकिन उनके साथ निकट संबन्ध रखने पर लेखक को पता चलता है कि वे जीवन में कितने अकेले और उपेक्षित है । दिन-रात मेहनत करके वे अपने परिवार केलिए कमा रहे है, फिर भी उनकी पत्नी वे बच्चों को उनसे नफरन है और वे उन्हें अकेले छोडकर चले जाते हैं । पाण्डेयजी कहते हैं - 'जानते हैं, आज मेरी पत्नी ने इकावन साल में मेरे सामने पहली बार

जबान खोली है । मुझसे घोर झगड़ा किया है.... इकावन साल मेरे साथ निभाने के बाद बुढ़ापे में मुझे अकेला छोडकर।"[1] कहानी की सबसे दर्दनीय घटना यह है कि उनकी पत्नी तक उनके बुढ़ापे में उन्हें छोड़ रही है ।

एक अन्य कहानी 'वापसी' में भी बूढ़ें बाप की स्थिति यही है । वे भी अपने बच्चों यहाँ तक अपने पत्नी द्वारा उपेक्षित है । सालों बाद उनका रिटायर होकर घर वापस आना किसी को पसन्द नहीं आता । उनके साथ एक अजनबी की तरह ही बरताव होता है । अपने घर में उन्हें इतना भी प्यार और स्थान नही मिलता जितना उन्हें नौकर के यहाँ मिलता था । अंत में वे अपने घर से ही निकल जाते हैं ।

परिवार में वृद्धों का उपेक्षित रह जाना आजकल साधारण सी बात है। बच्चे उन्हें अपने साथ अपने लाभ केलिए ही रहने देते हैं । वे चाहते हैं कि किसी भी वजह से बूढ़ें-माँ-बाप की मृत्यु के उपरान्त उनकी संपत्ति उन लोगों के हाथ लग जाए । ये लोग उन्हें अपने घर में इसलिए रहने देते हैं कि अधिकतर माँ-बाप जायदाद अपने मृत्योपरान्त ही बच्चों को देते हैं । वे डरते हैं ऐसा न करने से कई वसीयत बदल न जाए । लेकिन परिवार में ये बूढ़ें मृत्यु तक बिल्कुल उपेक्षित ही रहते हैं । प्रतिमा वर्मा की कहानी तिनकों का घोंसला' कहानी की बूढ़ी माँ की स्थिति यही है । उनके बेटे ने उनकी

---

1. गिरिराज शरण, सिमेण्ट में उगी घास, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 61

संपत्ति पर कब्जा कर लिया था । घर के एक अन्धेरे कमरे में उन्हें सडने केलिए छोड दिया गया था । बीमार माँ को कभी डाक्टर को नही दिखाया गया था। जब चन्द्रा वहाँ डाक्टर बनकर पहुँच जाती है तब मुफ्त में इंलाज करने केलिए उसे घर बुलाया जाता है । वह पाती है कि बूढ़ी दादी को ऊपरी मज़िल के अन्धेरे बन्द कमरे में रखा गया है जहाँ बहुत दिनों से कोई गया नहीं है । "अन्दर आने पर मैंने देखा-दादीजी बेहोश थी-आँखे अधखुली । अपने भीतर का कष्ट देखते-देखते जैसे संज्ञाशून्य हो गई हो । कफयुक्त पीली उल्टी उनके मूँह से लेकर गले तक जमी थी, जिससे दुर्गन्ध उठ रही थी। लगता था घण्टों से इसी स्थिति में पड़ी हों।"[1]

उदय प्रकाश की कहानी "छप्पन तोले का करधन' कहानी की बूढ़ी माँ भी इसी तरह उपेक्षित है । उनके बच्चों को भी उनके 'करधन' पर नज़र है जो उनके पास है या नहीं यह भी निश्चित नहीं है । कहानी में बताया गया है - "हम सब दादी को अक्सर भूल जाते थे और कभी-कभी तो महीनों उन्हें नहीं देखते थे, न वे हमारी आँखों के सामने कहीं होती, न हमारी स्मृति में उनका कोई अस्तित्व रहता।"[2]

राजी सेठ की कहानी 'उसका आकाश' का बूढ़ा बाप सालों से वहीं के वहीं खाट पर पडा है । उनकी खिडकी से जो थोड़ा बहुत आकाश दिखता

1. गिरिराज शरण, तिनकों का घोसला, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 77
2. उदय प्रकाश, छप्पन तोले का करधन, तिरिछ और अन्य़ कहानियाँ, पृ. 48

है वही उसका बाहरी दुनिया से संबन्ध है । वह चाहता है कि सब उसके पास आए या वह सबके पास जाए लेकिन किसी के पास उसकेलिए वक्त नहीं है। जब उसे पता चलता है कि सामनेवाली ज़मीन पर मकान बन रहा है तो वह बहुत खुश होता है कि खिडकी से वह अन्य लोगों को देख सकेगा । लेकिन जब मकान बन जाता है तो सारे मजदूर लोग चले जाते हैं और एक थोडा सा जो आकाश खिडकी से दिखता था वह भी मकान से ढंक जाता है, और जो थोडी सी खुशी उसकी वश की थी वह भी मिट जाती है । वह कहता है - "वर्षों से इस छोटे-से कमरे में इसी खाट पर, दवाइयों की कतारों में घिरा, पसीने की चिपचिपाहट में बार-बार ठण्डा-गरम होता।"[1]

उपर्युक्त तीनों कहानियों में हम ऐसे बूढ़ें जनों को देखते हैं जो रोग ग्रस्त हैं साथ ही बिल्कुल उपेक्षित भी हैं । ये लोग चाहते हैं कि वे उस कमरे से बाहर निकले और दूसरों से मिलकर अपने-आप को कुछ ठीक महसूस करे । लेकिन उनके बच्चों ने उन्हें बिल्कुल ही अनदेखा कर दिया है । वे सोचते होंगे कि अपने खुशी भरे माहौल में क्यों मुसीबत झेले । इसी कारण न वे उनसे मिलते हैं और न उन्हें किसी से मिलने देते हैं । एक अन्य बात यह भी है कि मँहंगाई के इस समय में वे अपने बूढ़े माँ-बाप केलिए पैसे भी खर्च करना नहीं चाहते । क्योंकि वे मानते हैं कि ये लोग तो अधिक दिन जीवित भी नहीं रहनेवाले हैं फिर इन लोगों केलिए फालतू का खर्च क्यों

1. गिरिराज शरण, उसका आकाश, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 95

उठाए। इस प्रकार माँ-बाप की ज़िन्दगी भर की कमाई को हड़पकर, उनकी जवानी के पूरे रस को चूसकर उनके वार्धक्य में उन्हें सडने केलिए एक कोने में छोड दिया जाता है । इसकेलिए एक अन्य उदाहरण है 'बंद घडी' की बूढ़ी माँ । उनके चारों बेटे शहर रहते हैं और वे अकेली गाँव में । एक बार जब वह बीमार पडती है तो उसका मन चाहता है कि बेटे उसके पास आए और उसकी सेवा करे, लेकिन कोई नहीं आता । "उस समय भी अम्मा को लगा था कि उनके सभी बेटे उनकी बीमारी का समाचार सुन कर दौड़ चले आएंगे । अम्मा ने अपने पडोस में रहनेवाले हरकिशन से लिखवा कर अपने चारों बेटों के नाम चिट्ठियाँ डलवा दीं । हरिकिशन और उसकी पत्नी की सेवा से अम्मा ठीक भी हो गई लेकिन उनका एक भी बेटा उसके पास नहीं आया।"[1] इस प्रकार अधिकतर माँ-बाप को नौकरों के सहारे अथवा पडोसियों के सहारे ही जीवन बिताना पडता है ।

पुराने ज़माने में घर के बडों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। उनका रहन -सहन, खान-पान आदि का बहुत ध्यान रखा जाता था । परिवार में उनके खाने के बाद या उनकी खतिरदारी करने के बाद ही अन्य सदस्य खाते अथवा अन्य कामों में लगते । इस कार्य में अधिक ध्यान घर की बहुएँ ही रखती । लेकिन जब से घर-परिवार में बहुएँ भी नौकरी करने लग गई हैं, तब से घर के वृद्धजनों की दुर्दशा शुरु हो गई । कामों में व्यस्त नई पीढ़ी,

1. शरद सिंह, बंद घडी, नई धारा अप्रैल-मई 2010, पृ. 97

अक्सर ये भूल जाती है कि उनके अभाव में माँ-बाप भूखे ही रह गए हैं । वे कभी बाहर से खाकर आ जाते हैं अथवा देर से आकर आधी रात को खाते और बेसहरे माँ-बाप भूखे ही सो जाते क्योंकि उन्हें खाना परोसनेवाले कोई होते ही नहीं घर में । जगदीश नारायण चौबे की कहानी 'दादी का कंबल' की बूढ़ी माँ की अक्सर यही दशा है । उनका एकमात्र सहारा उनका पोता है । बेटे और बहू को कभी उनकी ओर ध्याने देने केलिए ही वक्त नहीं है क्योंकि वे अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते हैं । "आंफिस से आने के बाद यहाँ मीटिंग, वहाँ बैठक। फुर्सत नहीं मिलती किसी के दुःख-सुख पूछें।.... ग्यारह बजे रात में लोग लौटे । खाकर ही लौटे होंगे ।"[1]

कलानाथ मिश्र की कहानी 'पार्क' का बूढ़ा अपने आप को बहुत उपेक्षित महसूस करता है । रिटायर्ड हो जाने के बाद उन्हें कोई नहीं पूछता। वह रोज़ पार्क में जा बैठता है और अपने आप को खुश रखने की कोशिश करता है । कभी-कभी तो बहुत रात होते तक वह वहीं बैठा रहता है लेकिन कोई उसे लेने नहीं आता, फिर कोई आता है तो भी बहुत देर बाद । लेखक जब उनसे उनका घर का पता पूछता है तो वे कहते हैं - "घर ! कौन सा घर ? अब वह घर नहीं । घर तो उसे कहते हैं जहाँ परिवार हो, कहते हुए जगदीश बाबू चुप हो गए । कुछ देर मौन के बाद पुनः बोले-मैंने भी शोक से बनवाया था घर । पत्नी, बेटे सबकी सुविधा । किसकी क्या पसन्द है ।

1. जगदीश नारायण चौबे, दादी का कंबल, नई धारा 2010, पृ. 83

उनके हिसाब से उनका कमरा बनवाया था, सजाया था । नौकर, चपरासी, शानो-शौकत लगता था सब मुझ पर जान लुटाते है । पर आज मैं उसी घर में जैसे बेगाना हो गया हूँ । बिल्कुल अपरिचित अवांछित अब घर कहाँ?"[1] यह विलाप इस प्रत्येक बूढ़े की ना होकर संपूर्ण वृद्धजनों का है जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी और कमाई अपने परिवार केलिए लुटा दिया लेकिन उनके जीवन की बुझती बेला में उन्हें अपने बच्चों और परिवार के अन्य लोगों ने ही तिरस्कृत कर दिया है ।

मदन मोहन की कहानी 'बूढ़ा' का बूढ़ा बाप भी अकेला और उपेक्षित है । उन्हें अपने गाँव से शहर लाया गया है । महानगरीय वातावरण में वे अपने को बिल्कुल अकेला पाता है और इसीलिए वह भी पार्क में ही शरण लेता है । जब वहाँ बहुत से लोगों से मुलाकात होती है तो मन संतुष्ट हो जाता था । एक दिन वो एक लडका और लडकी से मिलता है और जल्दी ही उनके बीच एक संबन्ध जुड जाता है, वे बहुत देर बातें करते हैं । बूढ़े को लगता है कि सालों बाद आज जाकर वह किसी अपने से मिला है । उन दोनों के प्यार भरी बातों के बाद बूढ़े को लगता है कि अब जाकर जीवन में एक अर्थ निकला है । अधिकतर परिवारों में ऐसा ही होता है, जब बच्चे बूढे माँ-बाप को उपेक्षित रखते हैं तो वे थोडे से प्यार और खुशी केलिए भटकते हैं और जब कभी कोई थोडा सा भी प्यार से उनसे बात कर ले, उनकी जी भर जाता है ।

1. कलानाथ मिश्र - पार्क, नई धारा अप्रैल -मई 2010 - पृ. 113

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'अपना-अपना आकाश' की वृद्ध माँ को उसकी सारी संपत्ति छीनने के बाद उपेक्षित किया जाता है । उसने बडे जिम्मेदारी के साथ अपने घर को संजोया था । लेकिन जैसे-जैसे उसके बच्चे बडे होते गए, घर का माहौल बदलता गया । उसके तीनों बेटों ने उसकी शेष ज़िन्दगी को किस्तों में बाँट दिया । वह कभी किसी के साथ रहती तो कभी किसी और के साथ । बच्चों केलिए वह अब एक बोझ बन गई थी । अंत में उसके नाम जो दस बीघे ज़मीन बची थी वह भी बेटे अपने नाम कर लेते हैं । सारे ज़मीन-जायदाद अपने नाम करवाने के बाद उन्हें वृद्धाश्रम में रखने का निश्चय लिया जाता है और यह तय किया जाता है कि अगर कोई पूछेगा तो उन्हें बताया जाएगा कि घर-परिवार से उनका जी भर गया था और वह अध्यात्म की तरफ प्रवृत्त हो गई । लेकिन अम्मा को उनके षड्यंत्र का पता चल जाता है और वह हमेशा केलिए अपने बच्चों को छोड़कर देवर के पास चली जाती है । वर्तमान ज़माने में अधिकतर माँ-बाप की स्थिति यही है । छल से उनकी देखभाल करने का दायित्व बच्चे अपने ऊपर लेकर बूढ़े माँ-बाप से सारी संपत्ति छीन लेते हैं और बाद में उन्हें घर से निकाल दिया जाता है या फिर वृद्धाश्रम में रहने देते हैं । आज-कल अखबारों में भी इस प्रकार की कई खबरें आ रही हैं ।

जहाँ बूढ़े माँ-बाप दोनों जीवित है, उनकी स्थिति भी कुछ खास नहीं।

सारी संपत्ति के साथ उनका भी बँटवारा किया जाता है । ज्योकि माँ-बाप के साथ-साथ रहने से बच्चों का खर्च बढ़ता है, इसलिए उन्हें अलग-अलग घर में रखा जाता हैं । कुछ समय तक बाप एक के साथ रहता है तो कुछ समय तक माँ । इस प्रकार बुढ़ापे में उन दोनों को भी एक दूसरे से अलग किया जाता है । नरेन्द्र कोहली की 'शटल' कहानी के माँ-बाप ईश्वरदास और भागवन्ती, एक दूसरे से अलग होकर, दो-दो पुत्रों के साथ रहते हैं । पत्नी से बिछुडकर वे अपने-आप को उपेक्षित और अकेला महसूस करते हैं । वे सोचते हैं -"उसके ये बेटे, जिनकी शादियों को दो-दो, चार-चार साल हुए है, वे यह क्यों नहीं सोचते कि उनके बाप की शादी को पैंतीस साल हो गये है। ये साले अभी से अपनी बीवियों से एक दिन भी अलग नहीं रह सकते तो वह, जिसने पैंतीस साल में अपने आपको एकदम आश्रित बना लिया है - कैसे भागवन्ती के बिना रह सकता है । बुढ़ापे में और कोई साथ बैठकर प्रसन्न भी नहीं है - वे उसकी पैंतीस वर्ष की संगिनी को भी उससे अलग करने पर तुले हुए है ।"[1] माहौल से यद्यपि वे अप्रसन्न है अलग रहने केलिए बाध्य है क्योंकि उनका और कोई चारा भी नहीं हैं । बाप के इस दुःख पर बहू-बेटे तो मुंह छिपाकर हँसते हैं । लेकिन उनके आंतरिक दर्द को कोई नहीं समझ पाता । अंत में वह पत्नी के साथ रहने केलिए दूसरे बेटे के पास पहुँचता है, लेकिन बेटा उसे उसी दिन वापस भेज देता है- "पर मेरा ख्याल है कि आप

1. गिरिराज शरण, शटल, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 67

अंधेरा होने से पहले-पहले ही चले जाए, नही तो आपको मुश्किल होगी ।"[1] और उस बूढ़े ने कुछ कहे बिना ही अपनी पत्नी के पास से वापस लैट जाता है ।

सूर्यबाला की 'निर्वासित' कहानी के माँ-बाप भी बच्चों केलिए बोझ बने हुए हैं । पूरी संपत्ति बच्चों को बाँट देने के बाद वे दोनों बडे बेटे के साथ रहते आ रहे हैं । लेकिन वहाँ कि स्थिति ऐसी है कि बहू के इजाजत के बिना चाय बनाना भी मुश्किल है । उन्हें बच्चों के कहे मुताबिक ही जीना पड रहा है । घर में पूजा-पाठ करना मना है क्योंकि अगल-बगल के लोग उनकी हंसी उठायेंगे । बाबूजी के पाठ करने पर बहू कहती है - "मांजी, जरा बाबूजी से कहिएगा, इतनी जोर से पाठ न किया करें । वहां घर की बात और थी, यहाँ सब आफिसर्स ही रहते है । और फिर भगवान तो सब जगह है । देखिए न कबीरदासजी ने भी कहा है - ता चढ़ि मुल्लां बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय! आप और बाबूजी मन-मन में पूजा कर लिया कीजिए... ये गुस्सा होते है ।"[2] तब से माँ-बाबूजी का पूजा-पाठ बंद हो गया । फिर दोनों बेटों में यह तय किया जाता है कि माँ एक के साथ और बाबूजी दूसरे के साथ ही रहेंगे । बाबूजी को अब छोटे के साथ जाना है । वे अपने पत्नी से कहते हैं - "अब जब दो बेटे हैं, तो एक ही दोनों का खर्च उठाए, ठीक नहीं लगता

---

1. गिरिराज शरण, शटल, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 72
2. सूर्यबाला, निर्वासित, इक्कीस कहानियाँ, पृ. 196

न...? है कि नही? ठीक ही सोचा दोनों ने, अभी यहाँ बेबी छोटी है, तुम यहाँ रहोगी । सात-आठ महीने बाद छोटी की डिलिवरी होगी... फिर तुम वहां चली जाओगी... छोटे के पास.. मैं यहां... तो चलूं... तुम जरा मेरी कमीजें वगैरह....।"[1]

इस प्रकार अपने जीवन की अंतिम वेला पर वे बच्चों द्वारा उपेक्षित ही नहीं बल्कि अपने अधिकारों से भी वंचित हैं । बूढ़ों और पोते-पोतियों के बीच हमेशा एक रिश्ता कायम रहता है, वात्सल्य का रिश्ता । सभी बूढे लोग चाहते हैं कि वे अपने पोते-पोतियों को गोद में उठाए, खिलाए, कहानियाँ सुनाए आदि । हमारे अतीत में ऐसी एक परंपरा भी रही थी । बच्चों के साथ नाना-नानी, अथवा दादा-दादी का होना आशिर्वाद माना जाता था । लेकिन आज स्थिति बदल गई है । आज अणु परिवार की बहुलता होने के कारण ही परिवारों में बुजुर्गों का होना न के बराबर है । इसी कारण बच्चों का भी अपने दादी-दादी से संबन्ध टूट गया है । नई पीढ़ी पुरानी पीढी को तब ही अपने पास चाहती है जब उनसे उनकी कोई आवश्यकता हो, जैसे बहू गर्भवती हो, या बेटे का स्थानान्तरण हो गया हो, अथवा नौकर छुट्टी गया हो आदि । लेकिन तब भी बच्चों को उनसे दूर ही रखा जाता है अथवा बच्चे खुद उनसे दूर ही रहते हैं ।

मृदुला गर्ग के 'बॉसफल' कहानी की वृद्धा ममता और वात्सल्य की

1. सूर्यबाला, निर्वासित, इक्कीस कहानियाँ, पृ. 200

भावना से युक्त है । वह अपने पोते अजय से बहुत प्यार करती है । अजय की माँ अजय के अनुशासनहीन होने का सारा दोष दादी पर लगाती है । अजय भी कभी-कभी दादी को भला-बुरा कह देता है । सारा अपमान सहने के बाद भी दादी अजय को अपने हाथों से खिलाना और प्यार करना चाहती है । सबके द्वारा उपेक्षित होने पर भी वह उनको घृणा नहीं कर पाती । निरुपमा राय की 'चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते है!" कहानी के दादा अपने पोतों को प्यार देना चाहता है । वे उन्हें कहानियाँ सुनाना चाहते हैं । लेकिन उनके पोते उनसे दूर ही रहते हैं । इस बूढ़े के साथ समय गुज़ारने केलिए उन्हें भी पसन्द नहीं है । वे कहते हैं - "पर मेरे पोते-पोती को दादा की कहानी से कोई मतलब ही नहीं है । प्रतिदिन अपने शरीर से भारी बस्ते को पीठ पर लादकर स्कूल जाते है । .... फिर वीडियों गेम में आँखे धंसाकर पडे रहना ही उनकी दिनचर्या है । रही-सही कमी विभिन्न केबल नेटवर्क पूर्ण कर देते हैं... मेरा हृदय पीड़ा से विदीर्ण हुआ जाता है ।"[1] वर्तमान समय के बूढ़ों की यही स्थिति है । किसी के पास उनकेलिए वक्त नहीं है । आधुनिक माँ-बाप सोचते हैं कि अपने बच्चों को अधिक-से-अधिक सामग्री उपलब्ध कराकर उन्हें अन्य बच्चों से आगे कर दे । उनका मानना है कि वृद्धों के साथ घुल मिलने से इनके बच्चे बिगड जाएँगे । लेकिन ये माँ-बाप यह भूल जाते हैं कि इन लोगों को, जो अपने-आप को सभ्य और परिष्कृत मानते है, इनका

1. निरुपमा राय, चलो, एक बूढ़े की कथा सुनते है, नई धारा अप्रैल -मई 2010, पृ. 142

पालन-पोषण इन्हीं बूढ़ों ने किया है । किसी अन्य लोगों से अधिक, इन्हीं बूढ़े लोगों से उनके बच्चों को अधिक शिष्टता और समझदारी मिलेगी क्योंकि उनके पास अधिक जीवन अनुभव है ।

बच्चे अपने माँ-बाप को देखकर ही बडे होते हैं । जब वे देखते हैं कि खुद उनके बच्चे इन बूढ़ों की उपेक्षा कर रहे हैं तो वे कैसे पीछे रहेंगे । वे भी अपने दादा-दादी से घृणा दिखाते हैं और उन्हें अपमानित भी करते हैं। रामकुमार 'भ्रमर' का 'मोहताज' कहानी का अम्मा शहर में अपने बेटे के साथ रहने केलिए आई हुई है। बेटा, उसकी पत्नी और दोनों बेटियाँ आधुनिक परिष्कृत व्यक्तित्व के प्रतीक है और अम्मा ठहरी गाँवार । इतने बडे घर में अम्मा केलिए जगह नहीं है तो उनका बिस्तर पोतियों के कमरे में डाला जाता है । अगले दिन वे शिकायत करतीं हैं कि दादी रात भर खाँसती रहती है । इसीलिए उनका बिस्तर बैठक में डाला जाता है । लेकिन वहाँ भी कठिनाइयाँ है । पोतियों को अपमान होता है जब अम्मा उनकी सहेलियों के सामने ज़मीन पर बैठती है ।वे अपने पापा से शिकायत करती है - 'पापा, दादी कहीं भी बैठ जाती हैं । उन्हें कहो ना, यह कुछ अच्छा नहीं लगता ।"[1]

सूर्यबाला की कहानी 'बाऊजी और बंदर' में बाऊजी को बन्दरों को भगाने केलिए बेटे के घर रहने देता है । बाऊजी को बच्चों से बहुत प्यार था

1. गिरिराज शरण, मोहताज, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 112

तो वे बीच-बीच में गाँव से शहर अपने बेटे के पास आ जाता था । बेटा और बहू दोनों को उनका आना बिल्कुल पसन्द नहीं था । वे घर के कामों में उन्हें लगा देते । कुछ दिनों के बाद वापस भेज देते । इस बार उनके घर में बन्दर नुक्सान करने लगा तो उपाय निकाला गया कि बंदरों को भगाने केलिए बाऊजी को रखा जाएगा । गाँव से बाऊजी को लाया जाता है तो वे बहुत खुश होते हैं कि उन्हें बच्चों के साथ वक्त मिलेगा । लेकिन बच्चे भी उन्हें नौकर जैसे ही मानते हैं और उनपर हुकूमत चलाते हैं । उन्हें धमकाया जाता है कि यदि बन्दर नहीं भगाए तो वापस गांव भेजा जाएगा । बेटा कहता है - "इतना डरते हैं तो जाएं वापस गांव और उड़ाए जाकर खेत में चील-कौव्वे... हमारे किस काम के।"[1] पोतों के साथ रहने की लालच में, बन्दरों से डरने के बावजूद भी, बेटे के अपमानित करने पर भी, वे वहीं रहते हैं। परिवार में अधिकांश बुजुर्गों की स्थिति आज यही है । अपनापन और स्नेह पाने की चाह में वे कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं ।

समय के साथ समझौता करना

जब से संयुक्त परिवार की जगह अणू परिवार ने ले ली है, तब से परिवार का डोर भी बुजुर्गों के हाथ से युव-पीढ़ी के हाथों में आ गया है । घर में बड़ों के रहते हुए भी सारा कार्य वे ही तय करते हैं । न ही बड़ों से सलाह लिया जाता है और न ही उनकी बात मानी जाती है । बच्चे जो चाहते

1. सूर्यबाला, बाऊजी और बन्दर, इक्कीस कहानियाँ, पृ. 16

हैं और कहते हैं उसी के मुताबिक उन्हें जीना पडता है । इसका एक दूसरा कारण यह भी है कि नई पीढ़ी कमाती है और पुरानी पीढ़ी व्यर्थ बैठी है। जो कमाकर पैसा लाता है उसी की हुकूमत चलती है । घर के किसी भी मामले में शामिल होने का अधिकार उन्हें नहीं है । कभी-कभी तो दूसरों को दिखाने केलिए उनको सभा में लाया जाता है और अगर कुछ गड़बडी हुई तो बाद में उन्हें भला-बुरा कहा भी जाता है । वृद्धजन ना चाहकर भी इन सबसे समझौता कर लेते हैं क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि अगर ऐसा नहीं किया गया तो जो एकमात्र सहारा उन्हें प्राप्त है वह भी नष्ट हो जाएगा । इस प्रकार समझौता करते-करते वे अपनी शेष ज़िन्दगी बिता लेते हैं ।

अपनी ज़िन्दगी से ही समझौता किए हुए एक वृद्ध बाप की कहानी बताती है 'श्रीलाल शुक्ल' की कहानी 'इस उम्र में'। कहानी का बूढ़ा बाप अपने बच्चों द्वारा बिल्कुल तिरस्कृत है । बुढ़ापे का सारा लक्षण उनमें मौजूद है । एक बार लेखक के घर के सामने उनकी दुर्घटना हो जाती है । कुछ दिनों बाद जब फिर से लेखक की बूढ़े से मुलाकात होती है तो उन्हें मालूम होता है कि दुर्घटना में उनका चश्मा टूट गया था और अब वे बिना चश्मे के निकलते हैं । उनके चाल से साफ व्यक्त था कि उन्हें बिल्कुल दिखाई नहीं देता । लेखक उनसे कई प्रश्न करता है वह जवाब देने में हिचकता है । उसका केवल एक ही उत्तर था सभी प्रश्नों केलिए कि - "इस उम्र में... सब कुछ बेकार सा है.. पर बच्चों केलिए....।"[1] बूढ़े ने अपनी हालात से बिल्कुल

1. श्रीलाल शुक्ल, इस उम्र में, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 26

समझौता कर लिया था । वह जानता था कि उनके बच्चे उनकेलिए कुछ करनेवाले नहीं है । बल्कि उनका पेंशन भी उनके हाथ नहीं लगता है । वे सोचते है कि उनकी ज़िन्दगी कैसी भी काट जाए, लेकिन बच्चों को कोई कष्ट दिए बिना आगे की ओर जाना है ।

गोविन्द मिश्र की कहानी 'साधें' की बूढ़ी माँ भी अपने समय की रानी थी । लेकिन जैसे-जैसे बूढ़ी होती गई, स्थिति भी बदलती गई । अब उनका कोई नहीं सुनता था । जब नतबहू के गोदभराई केलिए उन्हें भी शाहर बुलाया गया तो वह बहुत खुश हुई । गोद भराई केलिए वह भी पोते के घर पहूँच गई तो देखा गया कि कुछ भी उनके मूताबिक या रीति-रिवाज़ों के मुताबिक नहीं चल रहा । अम्मा को सब देखकर अजीब सा लगने लगा और वह बोलने लग गई तो उन्हें ठोका गया कि खामोश रहे । उन्हें बहुत बुरा तो लगता है पर उन्हें मालूम था कि अब उनका समय नहीं रहा । 'उनकी किताब के अनुसार यह सही नहीं था... लेकिन वे बहुत जोर देकर न कह सकी । अब यह वह समय नहीं हैं जब सब उनकी मानें, सब क्या.. कोई भी उनकी माने । बडे शहरों में बडों की नहीं छोटों की चलती है और छोटे वह सोचते है जिसमें उन्हें सुविधा हो।"[1] अम्माजी को बताया जाता है कि जो भी करना है वह दूसरी औरतें कर लेंगी, उन्हें सिर्फ इसलिए लाया गया है क्योंकि आज-कल बड़ें-बूढ़ों के आशीर्वाद मिलते नहीं हैं तो उन्हें सिर्फ आशीर्वाद देना है

1. गोविन्द मिश्र, साधें, वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 39

और चुप रहना है । हमारे समय के परिवारों की भी यही स्थिति है । बूढ़ों को आशीर्वाद देते और गुण-गान करते मेशीनों के समान माना गया है। किसी भी विशेष अवसर पर उनका पैर छुआ जाता है, उसका अर्थ समझे बिना और वह नई पीढ़ी जो अब-तक उनका तिरस्कार करते आए हैं, आशीर्वाद पाने केलिए उनका पैर छूते हैं और वृद्ध जन बहुत कष्ट सहने पर भी जी भरकर आशीष देते रहते हैं । यहाँ बच्चों को समझना चाहिए कि वे केवल उपकरण नहीं हैं बल्कि उनमें भी एक हृदय है जो प्यार, आदर और सहानुभूति चाहता है ।

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी 'अपना घर' की बूढ़ी माँ, अपने पर होते अपमान को समझकर भी उस हालात से समझौता कर लेती है । उनके लिए, उन्हें पोती के विवाह केलिए अपने अमीर बेटे ने घर बुला लिया, यही बहुत बडी बात थी । वहाँ पहूँचकर उन्हें और उनके छोटे बेटे और उसके परिवार को नौकरों के साथ ही रखा जाता है क्योंकि वे सुसंस्कृत-सभ्य लोगों के सामने लाने लायक नहीं रहे थे । लेकिन अम्मा हमेशा यह कहकर परिस्थिति को टाल लेती है कि अपने घर में ऐसा ही होता है कि घरवालों को ही समझौता करना चाहिए । बहु जब उन्हें कीमती साडी पहनाती है तो छोटी बहु बहुत खुश हो जाती है कि शादी के अवसर पर कम से कम अम्मा को नई साड़ी तो पहनाई गई । लेकिन रस्म के पूरे होते ही नौकर आकर अम्मा से साड़ी वापस ले लेता है । अम्मा का दिल तो बैठ जाता है फिर भी वे

कहती है - "अपने घर में यही होता है ।... बहुत भारी है ई साड़ी । संभार में नहीं आती । खैर, इज्जत तो बढ़ गई न । लोगों ने इतना तो देखा कि दुलहिन की दादी इतना कीमती साड़ी पहनती है । है कि नहीं?...."[1] बूढ़ों के प्रति नई पीढ़ी का यही बर्ताव आज के समय की सबसे बडी विडम्बना है ।

संतोष श्रीवास्तव की कहानी 'आकारों में कोहरा' के माँ-बाप इस हद तक समझौता कर लेते हैं कि वे अपने बेटे को उसकी खुशी में छोडकर, खुद घर से निकल जाते हैं और आश्रम में अभय ले लेते हैं । बाऊजी अपनी पत्नी के साथ बडे शान से रहते थे । लेकिन रिटायरमेंट के बाद हालत कुछ ऐसी बदल गई कि अब उनका घर में कोई स्थान नहीं रहा । जो आदमी अपनी मर्ज़ी से जिया करता था उसके दिनचर्य में रोक-ठोक लगने लगी । यहाँ तक कि सबके साथ बैठकर खाना तक मना किया गया क्योंकि खाते वक्त उनके मूँह से आवाज़ निकालती थी । वह पहचान जाता है कि वह और उसकी पत्नी बेटे और उसकी पत्नी केलिए बोझ बने हुए है । तो वह घर छोड़ने को सोच लेता है। वह बेटे से कहता है - 'परसों कोई टूरिस्ट बस चारों धाम की यात्रा पर जा रही है । मैं भी तुम्हारी माँ को लेकर जा रहा हूँ। सुना है बद्रीधाम में भक्तों का कोई आश्रम खुला है । तुम्हारी माँ की इच्छा है कि ज़िन्दगी के बाकी दिन वहीं गुजरे जाये।"[2]

---

1. रामधारी सिंह दिवाकर, अपना घर, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 73
2. संपा. डॉ. शीतांशु भारद्वाज, आकारों में कोहरा, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 34

ज़िन्दगी के अंतिम समय पर अपने बेटे के आश्रय लेने केलिए मज़बूरन बूढ़े बाप की कहानी है हृदयेश की 'जो भटक रहे हैं।' बेटा उसे छोडकर पाकिस्तान चला जाता है और वे अकेले भारत में ज़िन्दगी बिताने केलिए बाध्य हो जाता है । लेकिन अब स्थिति ऐसी आ गई थी कि बुढ़ापे ने उन्हें बहुत कमज़ोर बना दिया था । रोज़ की रोटी केलिए भी उसे तक्लीफ होने लगी थी और फिर उन्हें पत्नी का कब्र भी पक्की करनी थी । बेटे के आश्रय लेने के सिवाई और कोई उपाय भी नहीं था उनके पास यद्यपि जाने के बाद कभी बेटे ने मुड़कर उन्हें नहीं देखा । वह मन ही मन सोचता है - 'ज़िन्दगी भर जब उसने अपने हाथों से पैदा कर खिलाया तो मरने पर उसकी निशानी कायम रखने केलिए भी वह अपना पैदा किया हुआ पैसा ही खर्च करे। पर अब जब यह उसके बूते से बाहर की बात हो गई है तब बेटे का पैसा भी उसे मंजूर था।"[1] वर्तमान समय की यह बहुत बडी विडम्बना है कि बच्चों द्वारा उपेक्षित होने पर भी बूढ़ों को उनका सहारा लेना पड रहा है ।

जहाँ अधिकतर बूढ़ें लोग हालात से समझौता कर लेते हैं, वहीं कुछ लोग हालात से समझौता नही कर पाते । इसी कारण उनके और बच्चों के बीच एक बहुत बडी खाई पैदा हो जाती है । नई पीढ़ी उनकी बातों को स्वीकारने केलिए तैयार नहीं होती और पुरानी पीढ़ी उनके नए बदलाव को मानते नहीं । उन्हें लगने लगता है कि नई पीढ़ी उनका तिरस्कार कर रही है

1. हृदयेश, जो भटक रहे हैं, संपूर्ण कहानियाँ, पृ. 222

और वे एक प्रकार के आत्म संघर्ष में पडकर मनहूस होकर जीवन बिताने लगते हैं और इस कारण वे ज़िन्दगी में अकेले पड जाते हैं ।

रामकुमार 'भ्रमर' की कहानी 'मोहताज' की अम्मा को नए तौर-तरीके बिल्कुल पचते नहीं है । वे बात-बात पर बहू और पोतियों को सुधारती रहती हैं । पोतियों के छोटे-छोटे फ्रांक और बिना हाथ के कम्मीज़ पहनना उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं आता । घर के अंदर बीडी पीने से जब बहू सत्तसरूप को रोकती है तो मां को बहुत गुस्सा आ जाता है । इसी कारण अम्मा और बहू-पोतियों के बीच एक चिडचिडपन पैदा हो जाता है । शहर में पली-पढ़ी पोतियों केलिए बहुत अपमानजनक था जब उनकी दादी ज़मीन पर बैठ जाती है, तो वे अपने पिता से शिकायत करती है । इस पर अम्मा कह उठती है - "कहाँ बैठना है, कहाँ नहीं बैठना, क्या करना है, क्या नहीं करना-यह सब राधा को सिखाया जा रहा है।"[1] अब दादी केलिए वहाँ और रुकना कठिन था इसलिए वह वापस अपने गांव चली जाती है और बाकी ज़िन्दगी अकेलेपन में गुज़ारती है ।

इसी प्रकार गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानी' बूढ़ा ज्वालामुखी' का बूढ़ा बाप भी अपने महल जैसे बडे घर में बिल्कुल अकेला पड गया है क्योंकि वे अपनी हालात और माहौल से समझौते केलिए तैयार नहीं है । उनके कठोर स्वभाव के कारण उनके बेटा और बेटी दोनों उन्हें छोडकर चले

1. रामकुमाल भ्रमर, सं. गिरिराज शरण, मोहताज, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 112

जाते हैं । वे समझते हैं कि केवल वे ही सही हैं और दूसरे सभी गलत हैं । बेटा उनको समझाता भी है लेकिन वे कहते हैं - "मूर्ख मुझे सबक पढ़ाने चला है । इन बूढ़ी आँखों ने दुनिया देखी है।"[1] अब जब वह किसी को मानने केलिए तैयार नहीं था, उसका अकेला रहना ही ठीक निकला ।

इस प्रकार देखा जाए तो कभी-कभी वृद्धजन खुद भी अपने अकेलेपन केलिए ज़िम्मेदार होते हैं । उन्हें भी समझना चाहिए कि समय और हालात बहुत बदल गये हैं । अब माहौल वैसी नहीं रहा जैसे पहले उनके ज़माने में हुआ करता था । अगर इस प्रकार समझदारी से काम ले तो कुछ हद तक उनकी समस्या भी हट जाएगी । बस उन्हें भी बच्चों के साथ देना है ।

अस्मिता केलिए संघर्ष

वृद्धावस्था के पड़ाव तक पहूँचते-पहूँचते बूढ़ों की ऐसी एक मानसिक स्थिति बन जाती है कि उन्हें सब कुछ बुरा लगने लगता है । साथ ही साथ बच्चों के तिरस्कार और उपेक्षा उन्हें कभी निराश करता है अथवा ज़िन्दगी से ही तोड डालता है । ऐसी स्थिति में अपनी अस्मिता को कायम रखने केलिए वे कुछ न कुछ उपाय निकाल लेते हैं । कभी बात-बात पर झगड़ जाते, अथवा बात-बात पर दुःखी हो जाते । उनका इस मानसिक परिवर्तन को समझे बिना बच्चे भी उनपर बोलते रहते हैं।

---

1. सं. गिरिराज शरण, बूढ़ा ज्वालामुखी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 30

मृणाल पाण्डे की कहानी 'चिमगादड़ें' की बूढ़ी माँ बात-बात पर बेटियों से चिढ़ती है । उन्हें मालूम है कि वे रोग-ग्रस्त हैं और दूसरों की तरह होना उनकेलिए मुश्किल है । बेटियों के बार-बार समझाने पर भी वह नही मानती । वह कहती है - "तुम दोनों केलिए मैं बस एक ज़िदा लाश-भर हूँ। तुम्हारा बस चले तो कुत्ते की तरह बस एक सूखी रोटी डाल दो । ठीक कहते थे डॉक्टर डैनियल कि अगाथा, आदमी का अपना खून सबसे ज़्यादा दगा देता है । क्या मालूम था मुझे, मेरे ईसू ! कि अपनी ही बेटियाँ रोटी-रोटी पर टोकेंगी।"[1] बूढ़ापे तक आते-आते अपने 'होने' का अनुभव खुद बूढ़ों को ही नष्ट होने लगता है । उन्हें लगता है कि सब उनके दुश्मन हैं और इसीलिए सभी उन्हें टोकते है । तो इस सोच के कारण छोटी सी बात को भी वे बहुत बडा बना देते हैं और दूसरों के ध्यान पाने की कोशिश करते हैं ।

'आँखें' कहानी का बाबा रिटयारड होने के बाद भी नौकरी पर जाता है क्योंकि वह अपने को कमज़ोर और फालतू मानना नहीं चाहता है । उसकी शारीरिक स्थिति इतनी खराब है कि उसकेलिए ठीक से चल पाना भी मुश्किल है । जब उसकी पोती काम पर जाने से उसे मना करती है तो वे उसे चाट्टा मारता है और कहता है कि वे अभी ज़िन्दा है कि घर की बहु-बेटियाँ काम पर जाए । जिस दिन वह मर जाएगा तब से कोई भी काम पर जाओ। बूढ़ा जानता है कि वह अब बेकार और नाकामियाब है । इसीलिए

1. मृणाल पाण्ड, चिमगादडें, यानी कि एक बात थी, पृ. 17

वह सह नहीं पाता जब उसे किसी कोने में बैठने को कहा गया । जबकि वह भी जानता है कि बच्चों ने जो भी कहा सही ही कहा है ।

विवेकी राय की कहानी 'चौथा पाया' के बूढ़ें की स्थिति तो कुछ भिन्न है । वह एक भरपूर साहित्यकार है । पूरी दुनिया में उनका नाम है लेकिन वे अपने ही परिवार में उपेक्षित हैं अथवा अपने को उपेक्षित मानते हैं । उनके अपने दोस्त हैं, सभा है, वे मिलते-जुलते भी हैं लेकिन कभी-कभी वे अपने-आप को अकेला पाते हैं । जब-जब वे अपने आप को अकेला महसूस करते हैं, वे बीमार पड जाते है । तब वे अपने दोस्तों से कहते है - "अब समय आया कि मुझे ही गैर समझनेवाले पैदा हो गए । मेरे आगे अपने-पराए की नग्न-लीला वे खड़ी कर रहे हैं, जिन्हें दुनिया मेरा कहती है। मेरे ही लोग मुझे पराया समझें? अब मैं क्या कहूँ ? छाती फट जाती है । कलेजे के फोड़े बढ़ाते जा रहे है । एकाध सूखी रोटियाँ तोड़कर चौके से उठ जाता हूँ। कोई पूछनेवाला नहीं है।"[1]

'शटल' कहानी के पिता भी अपने बेटे के घर में ऊब गया था । वह खूब जानता था कि अब उनका या उनकी पत्नी के उस घर में कोई आवश्यकता नहीं है, अगर है भी तो घर के काम करने केलिए ही चाहिए था। उनका घर ही उनकेलिए पिंजरा समान बन गया था जहाँ कुछ भी करने की

---

1. विवेकी राय, चौथा पाया, सर्कस, पृ. 53

आज़ादी नहीं रही थी । उसको लगता है - "उसका कमरा किसी ने बाहर से बन्द कर दिया है और वह कमरा न रहकर पिंजरा बन गया है । फिर वह पिंजरा दिन-प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है और वह उसमें दबता जा रहा है । वह इस घुटन में और नहीं रह सकता ।"[1]

इस प्रकार वृद्धावस्था तक आते ही सभी बुजुर्ग अपने को खुद से और दूसरों से खो देने के बावजूद खुद केलिए लडते रहते हैं ।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जहाँ एक तरफ नई पीढ़ी के भोग-विलास और नए जीवन मूल्य उन्हें पुरानी पीढ़ी से अलग करते हैं, वहां दूसरी ओर पुरानी पीढ़ी की हालात को न समझ पाना और नए तौर-तरीकों को न अपना-पाना भी उनकी उपेक्षा का कारण बना हुआ है । उपर्युक्त कहानियों में ये समस्याएँ खूब चित्रित हैं और साथ ही इन समस्याओं का हल निकालने के लिए पाठकों को प्रेरित भी किया गया है । निष्कर्ष हम यह कह सकते हैं कि जब तक ये दोनों पीढ़ियाँ एक दूसरे को समझेंगी नहीं तब तक ये समस्याएँ भी बनी रहेंगी ।

❖ ❖ ❖

1. सं. गिरिराज शरण, शटल, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 68

चौथा अध्याय

समकालीन हिन्दी कहनियों में वृद्ध जीनव के अकेलापन और अनाथत्व

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्ध-जीवन के अकेलापन और अनाथत्व

भारतीय समाज में बहुत पुराने समय से ही वृद्धजनों को उच्च सम्मान मिलता आ रहा है । किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर उनकी राय ज़रूर ली जाती है । परन्तु वर्तमान सामाजिक परिस्थिति और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप यह स्थिति बिल्कुल बदल गई है । आज की व्यवस्था अर्थ-केन्द्रित बन गई है । इसका प्रमुख कारण है श्रमिकों का ग्रामांचल से शहरांचल की तरफ स्थानांतरण और शहरी बस्तियों की वृद्धि । इन सभी सामाजिक परिवर्तनों के कारण वृद्धों की सामाजिक अवस्था मे भी गहरा बदलाव आ गया है । भौतिक लाभ की लालच में आज परिवार के युवा वर्ग जीविका की तलाश में शहरों में बस जाता है और परिवार के प्रौढ़ सदस्य घरों में अकेले पड जाते हैं । जब युवा पीढ़ी शिक्षा अथवा जीविका केलिए शहरों में चली जाती है तब घर के वृद्ध, बच्चों से मिलनेवाले भौतिक सहारे और भावनात्मक सहयोग से वंचित रह जाते हैं । शहरों के अलावा आजकल लोग अधिक लाभ की इच्छा में विदेशों में स्थानांतरण कर रहे हैं, परिणामस्वरूप बुजुर्ग अपनी वृद्धावस्था में बिल्कुल अकेले पडकर पीछे छूट जाते हैं । ऐसी परिस्थिति में उन्हें अपनी देखभाल खुद करनी पड़ती है अथवा नौकरों पर निर्भर करना पडता है ।

आम तौर पर अधिकांश वृद्धजन अपने बच्चों के साथ ही रहते हैं । बच्चों की अनुपस्थिति उनकी भौतिक व भावनात्मक सुख-सुविधाओं को बहुत प्रभावित करती है । सीमित आवासीय स्थान, आर्थिक समस्या और समय की कमी, वृद्धों और युवजनों के बीच एक प्रकार का दरार बना देता है । शौक्षणिक प्रगित, संपर्कों का विस्तार तथा घर के बाहर नौकरी आदि के कारण युवापीढ़ी अपने बुजुर्गों की देख-भाल केलिए बिल्कुल समय नहीं निकाल पाते । इस कारण अक्सर वृद्ध एकाकी व अकेला महसूस करते हैं। अधुनिकीकरण ने पारिवारिक सत्ता के ढांचे में भी बदलाव ला दिया है । पारम्परिक तौर पर परिवार की युव पीढ़ी पर बुजुर्गों का एकाधिकार होता था। किन्तु वर्तमान समय में यह स्थिति नहीं रही । वे अपने अधिकार खोने लगे हैं और बदलते आर्थिक-सामाजिक वातावरण में अपने को ढाल पाने में असमर्थ हो गए हैं। युवा पीढ़ी के लिए भी पुरानी पीढ़ी बेकार और बोझ बन गई है । यह युव-पीढ़ी उन्हें अपने साथ इसलिए रखती है कि घरों में बुजुर्गों के होने से उनके जिम्मे घरेलू नौकरों के काम-काज की देख-रेख छोड़ी जा सकती है और उनकी गैर मैजूदगी में बच्चों की देखभाल भी हो जाएगी । फलस्वरूप वृद्धजन अपने को अवांछित महसूस करने लगते हैं साथ-साथ एकाकीपन का मनोभाव उनमें आ जाता है । अकेलेपन को झेलते इन वृद्धजनों के बारे में डॉ. शिवनारायण जी ने अपनी पुस्तक 'वृद्धजीवन की कहानियाँ' में सही ही लिखा है - "प्रायः सभी कान्तिहीन कोठियों में बूढ़ों की

निस्तेज उपस्थिति त्रासद कथाओं की एक-सी बानगी बयान करती । बच्चे बडे होकर काबिल तो बने, पर विदेश चले गये या अन्य राज्यों में विस्थापित हो गये ।बच गये बूढ़े.... घर-ज़मीन के मोह में संपत्ति जोगते दिन बिता रहे हैं । उपेक्षा, तिरस्कार और एकाकीपन को झेलते अपने स्वर्णिम दिनों की याद में जीते-जागते स्मारक!"[1] इस प्रकार वृद्धजनों के जीवन में हम एक प्रकार के अकेलापन और अनाथत्व को महसूस कर सकते हैं और इसका प्रमुख कारण बनता है परिवारों में उनका अकेला पड़ना, नौकरी के वास्ते विस्थापित बच्चे, वैधव्य, अपनी नौकरियों से सेवानिवृत्त होना आदि । इस अकेलेपन को झेलने केलिए कभी-कभी वृद्धजन अपनी शेष ज़िन्दगी वृद्ध-सदनों में बिताने का निर्णय भी ले लेते हैं । लेकिन उनका यह निर्णय भी कहाँ तक कामियाब रहता है यह सोचने की बात है । समकालीन कहानियों में इन समस्याओं पर गहरा प्रकाश डाला हुआ है और इस समस्याओं का हल निकालने का भी प्रयास हुआ है ।

अणु परिवारों का अकेलापन

अक्सर यह होता है कि जब बच्चे बडे होकर शादी-शुदा हो जाते हैं तो माँ-बाप सोच लेते हैं कि अब उनका हक उन्हें दे देना चाहिए और शेष ज़िन्दगी उनके आश्रय में जी लेना चाहिए और जहाँ माँ-बाप ऐसा नहीं सोचते वहाँ उनसे मजबूरन हक छीना जाता है । दोनों अवस्थाओं में परिणाम यही

1. डॉ. शिवनारायण - वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 8

निकलता है कि अपना-अपना हिस्सा और हक मिल जाने पर कोई भी औलात अपने माँ-बाप को साथ रखने केलिए तैयार नहीं होता और जो माँ-बाप अपने बच्चों के साथ रह भी पाते हैं उन्हें कई ताने भी सुनने पडते हैं । वे परिवार में अकेले और उपेक्षित तो बन जाते ही हैं साथ ही साथ अनाथ भी बन जाते हैं । शैलेश मटियानी की कहानी 'पुरखा' के थोकेदार की भी यही स्थिति है । थोकेदार अपनी सारी सम्पत्ति बेटों के नाम कर देता है । वह सोचता है कि आगे की ज़िन्दगी में विश्रम करेंगे और अपने छोटे बेटे के साथ रहने लगता है । लेकिन जैसे ही उन्होंने गृहस्थी की धागा बच्चों के हाथ रख दिया, उन्हें अपने अधिकारों से भी दूर रखा गया । बेटा दिलदार होकर उनसे कहता है - "बाबू अब आपको काम-धाम की चिन्ता क्यों पडी रहती? दो बहुऐं हैं, मैं हूँ, धनुवा है, आपको अब आराम करना चाहिए।"[1] बेटे के चाल को वह नहीं समझ पाता । छोटे के साथ रहने के कारण अन्य बेटे भी पिता के प्रति अपने कर्तव्य से मुँह मोड लेते हैं । इस प्रकार घर के अन्दर बेकार पडे थोकेदार अपने-आप को अकेला महसूस करने लगता है और अब बच्चे भी उन्हें अनदेखा करने लगे । यह अकेलापन उसे अन्दर ही अन्दर खा जाता है । "थोकेदार को लगा, जैसे वे जबर्दस्ती रहे जा रहे हैं इन लोगों के संग । उनकी ज़रूरत कोई महसूस नहीं करता । उनकी बात, उनकी आवाज़ अब कोई कीमत नहीं रखती"[2] अणु परिवारों में बसे सभी वृद्ध माँ-बाप की हालत

1. शैलेश मटियानी, परखा, सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ , पृ. 43
2. शैलेश मटियानी - सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ , पृ. 45

इस थोकेदार की हालतों से हटकर नहीं है ।वे जीते हैं क्योंकि वे जीने केलिए बाध्य हैं ।

आजकल परिवारों में बूढ़ें माँ-बाप का स्थान नौकरों के समान है । घर का सामान लाने, बच्चों को स्कूल छोडने, उनकी देखभाल करने केलिए ही नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी की ज़रूरत है । अपने अकेलेपन को दूर करने केलिए वे यह सब करने को भी राजी हो जाते हैं । इस प्रकार उनकी ज़िन्दगी एक यंत्र के समाज बन जाती हैं । एक ऐसा यंत्र जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है और जो सिर्फ दूसरों की इच्छा के मुताबिक चलता है । सुनील कौशिश की कहानी 'पराजित' के बाबू जगमोहन लाल और सूर्यबाला की कहानी 'सौगात' के बाबूजी ऐसे ही दो पात्र है जो अब एक यंत्र की जिन्दगी बिता रहे हैं । बेटे-बहूँ उनका फायदा उठाते हैं । किसी को भी उनकी कमज़ोरियों की अथवा परेशानियों की पर्वाह नहीं है । 'पराजित' कहानी का जगमोहन लाल शारीरिक तौर पर बहुत कमज़ोर है । उनको पिंडलियों का दर्द है । फिर भी वे चुपचाप घर के कामों में व्यस्त हैं क्योंकि वे जानते हैं कि बैटे के साथ शांति से रहने केलिए यह ज़रूरी है । वे बीच में सोचते तो है - "जब बूढा बाप पीपा कन्धे पर लादे चक्की पर जाता है, तब इन्हें ज़रा भी हया नहीं आती । सोचते होंगे रिटायर्ड बाप, एकदम फालतू आदमी, भला क्या गेहूँ भी पिसवाकर नहीं ला सकता ।"[1] लेकिन यह उनकी मज़बूरी है ।

1. सं. गिरिराज शरण, पराजित, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 126

सूर्यबाला की ही कहानी 'बाऊजी और बंदर' में बाऊजी को घर इसलिए रखा गया है कि बन्दरों के आने पर उन्हें भगाया जाए । गाँव से बाऊजी बच्चों से मिलने केलिए ही बाहर ठहरे बेटे के पास आता है । लेकिन उनका आना किसी को पसन्द नहीं आता । उन लोगों को इस बात का दुःख रहता है कि अभी उनके गए अधिक दिन भी नहीं हुए कि वापस आ गए । तभी ललित के मन में यह उपाय सूझता है कि घर पर आते बन्दरों को भगाने केलिए बाऊजी को लगाए जाए । इस प्रकार बन्दरों को भगाने केलिए बाऊजी को कहा गया और उनके हाथ में छड़ी भी दी गई । जिन पोतों के साथ रहकर उन्हें प्यार करने बाऊजी शहर आए थे अब वे भी उन्हें आज्ञा देने लगे थे । अब वे सचमुच आज्ञाकारी नौकर के समान बन्दरों के पीछे भागते जब वे नाकामियाब होते तो उन्हें टोका भी जाता - "इतना डरते हैं तो जाए वापस गांव और उडाए जाकर खेत में चील-कौव्वे.... हमारे किस काम के ।"[1] बाऊजी को बुरा तो लगता परन्तु अपने बच्चों के साथ रहने की चाह में वे चुपचाप रहते । एक बार जब बेटा अपने परिवार के साथ कुछ दिनों केलिए बाहर होकर लौटता है तो वह देखता है कि बाऊजी छोटे-बडे बंदरों से घिरे हुए हैं और वे उन्हें चने खिला रहे हैं । अपने अकेलेपन में उन्होंने दोस्ती उन बन्दरों से कर लिया था जिन्हें भगाने केलिए उन्हें रखा गया था ।

---

1. सूर्यबाला, बाऊजी और बन्दर, इक्कीस कहानियाँ, पृ. 16

वर्तमान समय के सभी बूढ़ों का यही हाल है । यहाँ बाऊजी को बन्दर मिल गए अपने अकेलेपन को दूर करने केलिए । लेकिन अधिकतर लोग अन्दर ही अन्दर घुटते हैं और बेसहारे रह जाते हैं । बच्चों द्वारा तिरस्कृत होना और अपमानित होना वे कभी सह नहीं पाते हैं और अपने-आप को पराजित मानकर वे कभी आत्महत्या तक कर डालते हैं ।

वृद्धावस्था से गुजरते वृद्धजनों केलिए घर पर छोटे बच्चों का होना बहुत बडा सहारा होता है । बच्चों के हंसी-खेल में उनका सारा दर्द मिट जाता है । अधिकतर बूढ़े इन बच्चों का साथ मिलने केलिए ही सभी अपमान और अकेलेपन सहकर अपने बेटे या बेटी के साथ रहते हैं । लेकिन अक्सर यह होता है कि जिन पोते-पोतियों का वे साथ चाहते हैं, वे भी उन्हें ठुकराते हैं । बच्चों केलिए भी वे केवल एक पुरानी अथवा 'आऊट डेटड' वस्तु के समान हैं और वे भी कभी उनके साथ वक्त निकालने केलिए अथवा उनके साथ देने केलिए तैयार नहीं होते हैं । इसका भी प्रमुख कारण यही है कि वे देखते हैं कि उनके माता-पिता केलिए ये बूढ़े लोग बोझ है और उनके प्रति इन लोगों का व्यवहार भी कठोर है । ऐसी स्थिति में बच्चे भी ये समझ लेते हैं कि वृद्ध लोग केवल एक कुड़े के समान हैं । नतीजा यही होता है कि इन बूढ़ों के प्रति इनका व्यवहार भी दर्दनाक होता है । न ही वे उन्हें अपना मानते हैं और न ही उनका आदर करते हैं, बल्कि उनके सामने ही उनका मज़ाक

उठाते हैं या अपमान करते है । 'बाऊजी और बंदर' कहानी में हमने यही देखा । बच्चे अपने दादाजी को बन्दर भगानेवाले ही समझते हैं और उनके प्रति बच्चों का व्यवहार भी ऐसा ही होता है ।

मृदुला गर्ग की कहानी 'बासंफल' की बूढ़ी माँ भी अपने पोता अजय से बहुत प्यार करती है । उस परिवार में उनका एकमात्र सहारा अजय ही है। उन दोनों के बीच का रिश्ता भी बहुत गहरा ही है । लेकिन अजय की माँ की यही शिकायत है कि बूढ़ी माँ ने उसे बिल्कुल बिगाड दिया है । वह कहती भी है - "पहले कुछ कह देती है, फिर पुचकारने का सिलसिला चलता है । इनकी वजह से बिल्कुल बेशऊर होता जा रहा है ।"[1] इस बात का समर्थन करते हुए अजय की माँ की सहेली भी यही सोचती है - "मैं जानती थी, मेरी सहेली ने ठीक कहा था । वे वहाँ न रह रही होती, तो अजय इतना मुंहफट न होता । अपनी माँ के गंभीर्य के नीचे पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की तरह ऊपरी तौर पर अनुशासित रहता।"[2] आज के माँ-बाप यह समझते हैं कि दादा-दादी या नाना-नानी के साथ रहने से उनके बच्चे बगड़ जाते हैं। इसी कारण वे अपने बच्चों को इन लोगों से दूर ही रखना चाहते हैं । लेकिन कभी-कभी उनकी यह मज़बूरी भी बन जाती है कि उन्हें बच्चों को बूढ़े माँ-बाप के साथ छोड जाना पडता है क्योंकि उन्हें नौकरी पर जाना है या अन्य कोई वजह से । पर इसके लिए वे कभी उनके शुक्र गुजार नहीं होते बल्कि

---

1. मृदुला गर्ग, बांसफल, संगति - विसंगति पृ. 427
2. वही - पृ. 427

शिकायती ही बनते हैं कि उनकी वजह से ही बच्चे बिगडे हुए हैं । मन्नु भण्डारी की कहानी 'मज़बूरी' की अम्मा का भी यही हाल होता है । उनके अकेलेपन में उनका सहारा बनता है, उनका पोता । बहू जब उसे उनके पास छोड़कर चली जाती है तो वह बहुत खुश होती है । वह अपने सारे गम भलकर जी जान लगाकर उसका पालन-पोषण करती है और दादी के लाड-प्यार में वह बडा होता है । लेकिन जब बहू वापस आती है तो उसे लगता है कि अपने बेटे को दादी के साथ छोड़कर उसने बहुत बडी गलती की । वह उसे अपने साथ वापस ले जाने का निर्णय लेती है । वह यह भी नहीं सोचती कि इस फैसले से माँ पर क्या बीतेगा । जैसे ही अम्मा को इस बात का पता चलता है वह बिल्कुल टूट जाती है । वह चाहती है कि बहू उसे नहीं ले जाए, लेकिन वह कह नहीं पाती क्योंकि उन्हें मालूम था कि कहना बेकार है । बहू तो अम्मा से कह देती है - "मैं आपका दिल नहीं दुखाना चाहती अम्मा, पर आपकी इस ज़रूरत से ज़्यादा प्यार ने ही तो इसे बिगाडकर धूल कर दिया है । एक भी आदत तो इसमें अच्छी नहीं है । यदि आप सचमुच ही इसे प्यार करती है और इसका भला चाहती है तो इसे मेरे साथ भेज दीजिए और इसके साथ दुश्मनी ही निभानी है तो रखिए इसे अपने पास।"[1] बहू केलिए अम्मा का बच्चे के साथ होना दुश्मनी निभाना है । अगर ऐसा है तो बच्चों को दादा-दादी के साथ क्यों छोडा जाता है ? केवल इसलिए कि

1. मन्नु भण्डारी, मजबूरी, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 24

उन्हें बच्चों को देखने लायक किसी की ज़रूरत है और बूढ़ें मां-बाप तो मुफ्त में काम कर भी लेंगे । इस प्रकार नौकरों की खर्चा का भी लाभ रहेगा । बूढ़ें लोग अपने समझकर जी-जान से इनका ख्याल रखते हैं और अंत में उन्हें निराशा ही मिलती है ।

जहाँ एक ओर नई पीढ़ी अपने बच्चों को पुरानी पीढी से दूर रखना चाहती है वहाँ कहीं न कहीं उन दोनों के बीच एक अत्मीयता का संबन्ध बन ही जाता है क्योंकि इन बच्चों को भी कभी अपने व्यस्त माँ-बाप से प्यार नहीं मिल पाता और वे इन बूढ़ों को ही अपना आश्रय मान लेते हैं । मंजुल भगत की कहानी 'दादी का बटुआ' की दादी और सरना, राजी सेठ की कहानी 'उसका आकाश' के बाबा और वरुण और जगदीश नारायण चौबे की कहानी 'दादी का कंबल' के दादी और रतन के बीच यही आत्मीयता का संबन्ध है क्योंकि वे ही एक दूसरे के सहारे हैं ।

'दादी का बटुआ' कहानी की दादी और उनकी पोती सरना में बहुत गहरा प्यार है । वे हमेशा एक दूसरे के मन बहलाते थे । उस कमरे से बाहर निकले दादी के कई साल हो गए थे । किसी को इस बात का ख्याल ही नहीं था कि बूढ़ी औरत उस कमरे में पडी है सिवाय सरना का । सरना की माँ हर चीज़ उसके हाथों अथवा नौकर के हाथों ही भेजती । अब दादी ने भी इस स्थिति से समझौता कर लिया था । उनके जीने का एकमात्र सहारा सरना थी।

कहानी के अंत में दादी की मृत्यु हो जाती है । मरने से पहले वह सरना के हाथों अपने बटुए से एक सोने की जंजीर पकडा देती है । सरना को पता ही नहीं चलता कि उसकी दादी चल बसी । अब वह अकेली हो गई है । उसके हाथों सोने की जंजीर देखकर उसकी अम्मा वह छीन लेती है । वह अपने पति को फोन लगाती है और कहती है - "तोबा ! अजी सब रिश्तेदारों को खबर करनी होगी । अखबार में भी तो देना होगा । मिट्टी उठवाने का इन्तजाम भी करना है । मुझे क्या मालूम था.. मैंने तो आज ही, उस कम्बख्त रामसिंह को भी छुट्टी दे दी।"[1] न ही सरना की अम्मा को इस बात का दुःख है कि दादी चल बसी और न ही उसे इस बात की खुशी है कि दादी ने जाते-जाते अपनी सम्पत्ति बच्ची के हाथों छोड़कर गई । उसको सिर्फ इस बात की चिन्ता है कि दादी के अचानक हुई मृत्यु से सारे घर की व्यवस्था में परेशानी आ गई । दादी ने अपने अकेलेपन से तो मुक्ति पा ली थी लेकिन सरना को घोर अकेलेपन में छोडकर ।

राजी सेठ की कहानी 'उसका आकाश' के बाबा का भी अकेलेपन बुझाने का एकमात्र सहारा उनका पोता वरुण और उनके 'हिस्से का आकाश' है जो बिस्तर पर पडे वे खिडकी से देख पाते हैं । उनका बेटा रोज़ उनके पास तो आता है, औपचारिकतावश यह पूँछने केलिए कि 'कैसे हैं बाबूजी ?' और यह एक साधारण सी बात थी । इस प्रश्न के सिवाय उनके बेटे या बहू

1. सं. गिरिराज शरण, दादी का बटुआ, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 93, 94

के ओर से कोई सहयोग या सहारा उन्हें नहीं मिलता था । उत्तर मिलने से पहले ही वे कमरे से निकल भी जाते । बाबा को लगता है - "सवाल जिसने पूछा है उत्तर उसे भी अपेक्षित नहीं है, क्योंकि वह तो इतना कहकर... अच्छे होने की चिन्ता को हवा में उछालकर गुनगुनाता हुआ जूते कस रहा है... अपनी चीज़ों को बटोर रहा है । यह तो कमरे में घुसने के लिए मौन-भंग के रूप में दी गई चुंगी है।"[1] अक्सर नई पीढ़ी यह मान लेती है कि बूढ़े माँ-बाप को समय पर दवाई-दारू, खान-पान दे दिया तो उनके प्रति जो कर्तव्य है वह भी निभाया गया है, लेकिन ऐसा नहीं होता । वृद्ध माँ-बाप ये बहुत चाहते हैं कि इन सब के अलावा अपने बच्चे अपनेलिए कुछ वक्त भी निकाले । जब ऐसा नहीं होता तो वे अन्दर ही अन्दर घुटते तो हैं लेकिन उनके प्रति स्नेह और वात्सल्य के कारण चुपचाप सब सह लेते हैं । वरुण बाबा से बहुत प्यार करता है । वह बाबा को दूध पिलाता है और उनके साथ खेलकर उनका मन भी बहलाता है । अपने अकेलेपन को दूर करने केलिए वे वरुण और उसके दोस्तों को खेलने केलिए अपने कमरे में जगह तक दे देते हैं । बाबा की दूसरी खुशी थी, जो छोटा सा आकाश का हिस्सा उनके बिस्तर पर लेटे उन्हें देखने को मिलता था । उनका बाहरी दुनिया से एकमात्र संबन्ध यहां से था । लेकिन जब वरुण और उसके दोस्त ऊबकर अपने खेलने केलिए दूसरी जगह ढूँढ़ निकालते हैं तो उनका एकमात्र खुशी रहती है उस छोटे से

1. (सं) गिरिराज शरण, उसका आकाश, वृद्धावस्था की कहानियआं, पृ. 97

हिस्से का आकाश । वहाँ से वे पूरी दुनिया को देखते थे । परन्तु उन्हें धक्का तब लगता है जब वे देखते हैं कि उनके मकान के बिल्कुल नज़दीक एक बडा ईमारत बन रहा है और उनके हिस्से का वह छोटा सा आकाश भी अब ढ़कनेवाला है । वहाँ सीमेंट का एक आयताकार टुकड़ा हड़प चुका था । कहानी खत्म होती है इस प्रस्ताव से - "इतनी घटपटाहट तो उसे मौत के मूँह में दिया हुआ सारे संसार की भविष्य देखकर भी नहीं हुई थी।"[1]

हमने देखा कि एक हद तक घर के छोटे बच्चे बूढ़ों केलिए जीने का सहारा बना हुआ है तो रामकुमार 'भ्रमर' की कहानी 'मोहताज' की बूढ़ी माँ को अपनी पोतियों से घृणा और अनादर ही मिलता है । राधा यह सोचकर गांव छोडकर शहर अपने पुत्र, बहू और पोतियों के पास आती है कि अपने जीवन की बाकी ज़िन्दगी उनके साथ खुशी-खुशी गुजारेंगीं । लेकिन राधा का आना किसी को पसन्द नहीं आता । उनका व्यवहार, तौर-तरीके सब पोतियों केलिए अपमान-जनक लगता है । वे गुस्से में अपने पिता से कहती हैं- 'पापा, दादी कही भी बैठ जाती है । उन्हें कहो न, यह कुछ अच्छा नहीं लगता।"[2] वर्तमान नई पीढ़ी केलिए पुरानी पीढ़ी अपमान लानेवाला एक साधन मात्र है । जहाँ एक समय था जब बच्चे अपने दादा-दादी या नाना-नानी के साथ चाहते थे, उनसे कहानियाँ सुनना चाहते थे और लोरियाँ सुनकर उनकी गोदी में सोना चाहते थे, वहाँ आज के बच्चे उनसे छुटकारा पाना

1. (सं) गिरिराज शरण, उसका आकाश, वृद्धावस्था की कहानियआं, पृ. 103
2. (सं) गिरिराज शरण, मोहताज, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 112

चाहते हैं । आधुनिक सभ्यता का घुसपैठ इसका प्रमुख कारण है ।आजकल 'एक क्लिक' में सब कुछ उपलब्ध है । कहानियाँ चाहिए, गाने चाहिए, गूगल पर जाओ और निकाल लो । रिश्तों का महत्व ही घट गया है । लेकिन बेच्चे ये नहीं समझते कि जो उन्हें मिल रहा है उसमें प्यार और वात्सल्य नहीं है, केवल निर्जीव जानकारियाँ ही हैं । उन्हें यह समझाना तो माता-पिता का काम है, लेकिन अपने काम से फुर्सत मिलने पर ही तो वे इन सब केलिए समय निकाल पाएँगे । इसका परिणाम भी यही होगा कि जब वे बूढ़े बन जाएँगे तो उनके प्रति भी वही व्यवहार होगा जो अब उनके बूढ़े माँ-बाप के प्रति उनका है । जो राधा जीने की चाह से अपने बेटे के पास आयी थी अब उसे मृत्यु का डर आने लगती है । उसे लगता है - "यहाँ तो मर जाने का डर लगने लगा है । पहली बार याद आने लगा है कि बूढी-बहुत बूढ़ी हो चुकी है । मोहताज । "[1] अब राधा केलिए वहाँ रुकना कठिन था और वह वापस अपने गाँव चली जाती है । उसे लगता है कि परिवार के साथ रहकर अकेलापन को महसूस करने से ज़्यादा अच्छा है अकेले रहकर ही अकेलेपन सहे । कभी-कभी बूढ़ों को घर पर अकेले रहने की वजहों में बच्चों की उपेक्षा के साथ-साथ यह भी एक कारण बनता है ।

कभी-कभी हम यह भी देखते हैं कि बूढ़ें माँ-बाप एक दूसरे के साथ छोड़कर अथवा किसी एक को अकेला छोडकर बच्चों के साथ बस जाते हैं।

1. (सं) गिरिराज शरण, मोहताज, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 113

उन्हें लगता है कि अपने साथी से ज़्यादा अपने बच्चों को उनकी ज़रूरत है। यह चिन्ता अक्सर माँ को ही आती है और वह अपने पति को छोडकर बेटे या बेटी के साथ रहने लगती है । सत्यराज की कहानी 'अनधिकृत स्वप्न' की माँ भी यही करती है । उसे लगता है कि उसके बेटा अजय को उसकी अधिक ज़रूरत है और इसलिए वह पति को छोड़कर शहर बेटे के पास आ जाती है । इस बात से उसका पति किशनलाल बिल्कुल सहमत नहीं होता। वह उससे कहता है - "यह तुम्हारा भ्रम है, कुन्ती। यह तुम नहीं, तुम्हारी ममता का लिया हुआ निर्णय है । आज जीवन की बहुत-सी मान्यताएँ समय की तेज धार पर चल-चलकर टुकड़ों में बँट गयी है ।"[1] लेकिन कुन्ती को यह लगता है कि पति उसको बेटे के खिलाफ कर रहा है और वह गुस्सा होकर चली जाती है । वह सोचती है कि उसके पीछे-पीछे पति भी आ जाएगा लेकिन ऐसी नहीं होता । महीने बीत गए और अब कुन्ती ने यह भी समझ लिया था कि बेटे के घर का जीवन उसे केवल सूनापन और अकेलापन ही दे सकता है । घर पर कोई उनपर ध्यान नहीं देता। सब अपने में व्यस्त रहते हैं । "जहाँ पति के घर सारा दिन विभिन्न घरेलू उत्तरदायित्वों और कार्यों को पूरा करने में गुज़र जाता था वहीं यहाँ बेटे के यहाँ वह एकदम खाली-खाली रहती ।.... ज़िन्दगी से कम ही लुभावनी लग रही थी ।"[2] बच्चों के साथ शहरों में अथवा विदेशों में ठहरे सभी माताओं की यही समस्या है।

---

1. (सं) गिरिराज शरण, अनधिकृत स्वप्न, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 118
2. वही, पृ. 119

वे समझते हैं कि अपने बच्चों केलिए उनका साथ होना बहुत खुशी और ज़रूरत की बात है । लेकिन वास्तविकता यह नहीं होती । उनका साथ रहना पहले-पहल तो खुशी ज़रूर देता है । लेकिन बाद में केवल बोझ ही ठहरता है । बेटे केलिए पत्नी और अपने बच्चों से बढकर कुछ नहीं होता । माँ को यह देखकर बहुत ठेस भी पहूँचता है कि बेटे उनपर कम और पत्नी पर ज़्यादा ध्यान दे रहा है । वह कभी-कभी यह भी भूल जाती है कि बेटा अब बडा हो गया और उसका अपना परिवार भी है। जब सब कुछ अपने सोच के विपरीत बन जाता है तो यह दोनों पीढ़ियों के बीच खासकर सास-बहू के बीच एक दरार पैदा कर देता है । यहाँ यह ज़रूर कहने की बात है कि अधिकतर घरों में सास-बहू की लडाई की भी यही वजह है । माँ कभी इस सच्चाई को अपना नहीं पाती और यह उसे मानसिक तौर पर भी कमज़ोर कर देती है जो बाद में बीमारियों में बदल जाता है ।

बेटे के घर का सूनापन कुन्ती को भी बीमार कर देता है । दवाईयों से घेरे अब वह बिस्तर पर ही पडी रहती है ।अब बहू का भी उसके प्रति व्यवहार में बदलाव आ जाता है । वह बच्चों को भी उनके पास जाने नहीं देती । उस घर में सब कुछ था । लेकिन जो उसे चाहिए वह उसे नहीं मिल रहा था । वह सोचती- "सजे-धजे कमरे में संपन्नता का वातावरण, उसके बीच में कीमती बैड, बैड के पास रखे स्टूल पर दवाइयों की लाइनें और इन सब वस्तुओं से घिरी पड़ी बीमार कुन्ती, हर पल अपने को और अकेला

और अकेला सा महसूस करने लगी ।"[1] कहानी को लेखक ने एक अच्छा अंत दिया है कि किशनलाल को कुन्ती की बीमारी का स्वप्न आता है और वह आकर उसे अपने साथ ले जाता है। लेकिन हकीकत में ऐसा कम ही होता है । इन बूढ़ों की हालत का किसी को पता भी नहीं चलता और न ही वे विदेश से देश या शहर से अपना गाँव आ पाते हैं । इस प्रकार ये बूढ़े अपने-अपनी अवस्था में एक दूसरे से अलग होकर अपना दम तोड़ देते हैं।

शहरी जीवन के शोर-शराबा और भीड़-भाड़ में दम घुटते वृद्धों की कथा बताती हैं मदन मोहन की 'बूढ़ा' और कलानाथ मिश्र की 'पार्क' कहानियाँ । शहरी जीवन किसी को सुख नहीं पहूँचाता । यहाँ पर लोग बिल्कुल यांत्रिक जीवन बिताते हैं । सुबह से लेकर रात तक रोज़ एक ही दिनचर्या । न किसी को दूसरे केलिए वक्त है और न एक-दूसरे की पर्वाह । सब जीते हैं सिर्फ अपने लिए और अपने सुख केलिए । पैसा कमाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य रहता है । ऐसी परिस्थिति में सबसे बडा आघात पहूँचता है घर के बूढ़ों पर। इस स्वार्थी माहौल में वे बिल्कुल ऊब जाते हैं। मदन मोहन की कहानी 'बूढ़ा' का बूढ़ा इस शहरी वातावरण और जीवन से तंग आ चुका था और वह उस वातावरण से छुटकारा पाना चाहता था । "दरअसल, बूढ़ाँ वर्षों से शहर में रह रहा था, और वह शहर से बिल्कुल ऊब चुका था । खासकर शहर के शोर, भीड़ और भागम भाग से । शहर के डेरे

---

1. (सं) गिरिराज शरण, अनधिकृत स्वप्न, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 120, 121

में बूढ़े का जो कमरा था, उसकी खिडकियों, रोशनदान आदि खुले होते, तो लगता कि शहर अपने लाव-लश्कर के साथ कमरे में घुस चला आ रहा है।"[1] वृद्धावस्था की यह एक बहुत बडी बात है कि वृद्ध-मन शांति और आराम चाहती है । इन शोर-शराबा और भीड-भांड से वे अपने को दूर ही रखना चाहते हैं । अक्सर ऐसा उन्हें नहीं मिलता और वे उस परिस्थिति से समझौता कर लेते हैं जिसके कारण वे अधिक कमज़ोर और रोगग्रस्त भी हो जाते हैं । कहानी का बूढ़ा भी इसी समस्या से गुज़र रहा है । वह इस शहर से गाँव जाना चाहता है लेकिन उसका बेटा इसकेलिए तैयार नहीं होता । वह हमेशा यही कहता - "चलेंगे बाबूजी, चलेंगे । किराया मैं दे रहा हूँ, आप नही। जरा धैर्य रखिए।"[2] बेटा कभी बूढ़े की परेशानी को समझ ही नहीं पाता। अब बूढ़े ने एक प्रकार के रहस्यमय मौन को अपना लिया था । उनका जीवन बिल्कुल यांत्रिक बन गया था । वह पूरा दिन मौन रहता था और किसी के आदेश पर ही कुछ करता था उसका यह मौन भी किसी केलिए पर्वाह की बात नहीं था । "अधिकतर उसे बोलने की ज़रूरत भी नही पड़ती। बेटा और बहू से तो महीनों नहीं । केवल बच्चों से ही उसका काम चल जाता । कोई बच्चा कहता-बाबा, खाना ! तो वह बिना कुछ बोले खाने पर बैठ जाता । बाबा, चाय। तो वह चाय पीने लगता ।... तो वह चुपचाप टॉयलेट चला जाता।"[3] किसी भी व्यक्ति केलिए अपने न पसंद के माहौल में जी पाना

---

1. डॉ. शिवनारायण, बूढ़ा, वृद्ध जीवन की कहानियाँ, पृ. 102
2. वही - पृ. 104
3. वही पृ. 105

कठिनाई की बात है । यह मानसिक स्थिति उसे सभी तौर पर कमज़ोर बना देती है । इसी कारण वह कभी रोगी बन जाता है या कभी पागल । कभी-कभी तो आदमी इस तनाव में आकर कुछ ऐसा भी कर जाता है जो उसे करना नहीं चाहिए। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जो किसी न किसी प्रकार अपने-आप को जीवित रखने केलिए कुछ उपाय निकाल लेते हैं । 'बूढा' भी अपना उपाय ढूँढकर एक पार्क में जाता है । वहाँ उसे एक प्रेमी और प्रेमिका मिलता है । वह चुपचुपकर उनकी क्रीडाएं देखता है और अपने निर्जीव मन को बहलाता है । यहाँ तक वह उनसे दोस्ती भी कर लेता है । इस प्रकार अपने ऊबे मन को वह शांत करता है । और उसे पहली बार लगता है कि "शायद उसकी मृत्यु भी फिलहाल एक, वाजिब समय तक केलिए टल गयी है।"[1]

शहरी जीवन की खारापन और वृद्धों के अकेलेपन की दूसरी कहानी बताती है कलानाथ मिश्र की 'पार्क' कहानी । 'पार्क' का, शहरी जीवन और बुढ़ापे के साथ जो गहरा संबन्ध है उसका चित्रण हुआ है इस कहानी में । शहर में बसते बुढ़ों केलिए उनका जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है पार्क, क्योंकि वही वह जगह है जहाँ उसे थोडा कुछ शांति, मनोरंजन और साथ मिलते हैं । इसलिए आजकल वृद्धलोग घर से ज़्यादा बाहर समय

1. डॉ. शिवनारायण, पार्क, वृद्धजीनवन की कहानियाँ, पृ. 111

बिताना चाहते हैं । लेखक ने पार्क को कुछ इस प्रकार वर्णित किया है - "बडे शहरों के संभ्रान्त मोहल्लों में जो कुछ बचे-खुचे पार्क हैं, वे महानगरों की अभिजात्य जीवन-शैली के अभिन्न अंग बन गये है । कृत्रिम, तनावपूर्ण, किन्तु भौतिक सुविधाओं से लैस जीवन जीते-जीते शहरी लोगों के शरीर में जंग लगने लगता है । फिर स्वास्थ्य के प्रति साकांक्ष शहरी जीव खुली जगहों की तलाश करने लगते है, जहाँ पहुँचकर वे खुली हवा में प्रदूषणमुक्त साँस ले सकें, अपने शरीर के जंग को छुड़ा सके।"[1] तो इस कथन से ही साफ-साफ व्यक्त है कि शहरी जीवन कितना दर्दनाक है और ऐसे जीवन में पार्क का क्या स्थान है । वैसे लोगों का पार्क में आने की कई वजह होती है । लेकिन अधिकतर वृद्धजन अपने अकेलेपन और अनाथत्व को दूर करने केलिए ही ऐसी जगह आते हैं । जो प्यार और ख्याल उन्हें घरों में नहीं मिलता वह कभी-कभी ऐसी जगहों में उन्हें मिल जाता है । जगदीश बाबू भी इस खुशी की लालसा में ही रोज़ पार्क आते । शाम काफी देर होने तक वहाँ रहते फिर चले जाते । जब सोमेश्वर बाबू उनसे देर तक पार्क में बैठे रहने केलिए सवाल करते हैं तो उनका जवाब कुछ अजीब होता है - "जानते नहीं बडे शहरों में बूढ़े-बुजुर्गों को टोकने की परिपाटी नहीं है । हम घर और समाज में लैबलिटी है, और परिपाटी है कि लैबलिटी से जितना बचा जा सके उतना

---

1. (सं) डॉ. शिवनारायण, मदन मोहन - पार्क, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 112

अच्छा है, क्यों है न...?"[1] इस कथन में वर्तमान समाज के सभी अनाथ बुढ़ों की वेदना हमें देखने को मिलती है । जब कोई बूढ़ा बन जाता है तो वह उस परिवार और समाज केलिए केवल एक लैबलिटी रह जाती है । सब उनसे छुटकारा पाना या दूर रहना ही चाहते हैं । वृद्ध की दृष्टि में सोमेश्वर बाबू का उन्हें टोकना बहुत बडा अपराध है । वे कहते हैं - "अपराध- हाँ, बहुत बडा अपराध किया है आपने...! जो अपराध आधुनिक युग में अब कोई नहीं करता । कोई मुझसे बात नहीं करता । कोई हमें टोकने की जहमत नहीं उठाता।"[2] अर्थात उनका यह कथन बिलकुल व्यंग्यात्मक है । उनके मन में इस बात की पीड़ा बहुत है कि उनसे बोलनेवाला और उनका सुननेवाला कोई नहीं है । परिवार में वे बिल्कुल उपेक्षित और अकेले थे । इसी कारण किसी बाहर वाले के टोकने पर उन्हें आश्चर्य होता है । वृद्ध को लेने केलिए उस दिन घर से कोई आता नहीं है और सोमेश्वर उन्हें घर छोड आता है । कुछ दिनों बाद अखबार में सोमेश्वर को वृद्ध की तस्वीर दिखती है जिसके नीचे लिखा होता है "जिनकी क्षति कभी भी पूरी नहीं हो सकती, हम सब आपके बहुत याद करते हैं, आपके बिना यह घर सूना लगता है । निवेदक -शोक सन्तप्त परिवार।"[3] हाल ही में अखबार में भी ऐसी ही एक खबर आयी थी कि किसी वृद्ध को पार्क में छोडा गया और किसी के न आने पर वे खुद

---

1. (सं) डॉ. शिवनारायण, पार्क, वृद्धजीनवन की कहानियाँ, पृ. 115
2. वही - पृ. 115
3. वही - पृ. 120

निकल गए और रास्ता भटक गये । पागल कुत्तों से घेरे वृद्ध को फिर लोगों ने अस्पताल पहूँचाया और फिर घर । यहाँ गलती किस की है ? वृद्ध को अकेले छोडे परिवारवालों के अथवा अनजाने शहर में निकल पडे वृद्ध की। शायद आधुनिक पीढ़ी यही मानेगी कि वृद्ध की, क्योंकि उन्हें अनजाने शहर में निकलना नहीं चाहिए था चाहे कितना भी रात हो जाए । कोई न कोई, कभी न कभी तो लेने ज़रूर आता ।

नौकरी-पेशा अथवा विदेशों में नौकरी करनेवाली संतान

आज की दुनिया बहुत रफ्तार से चल रही है । सभी लोग पढ़े-लिखे और समझदार हैं । कोई किसी से कम नहीं है या होना नहीं चाहता । ज़िन्दगी के इस दौड़ में सब आगे निकलना चाहते हैं । सब की यही चाह होती है कि हम दूसरों से बेहतर कैसे बने । यह दौड़ सभी तौर पर है - आर्थिक, सामाजिक यहाँ तक पारिवारिक और इन सब के मूल में है धन । धन कमाना ही वर्तमान आधुनिक समाज का एकमात्र लक्ष्य बन गया है । धन कमाओं और आष करो ! इस स्वार्थ चाहत की पूर्ति केलिए कोई गांव छोडता है और शहर में बसता है तो कोई शहर को छोडकर विदेश में बसता है । उसको न परिवार की ज़रूरत है न अपनी घर की । वह यही सोचता है कि कुछ ज़्यादा पैसा कमाले और फिर आराम से परिवार या घर बसाले। इस भाग-दौड़ में अक्सर पीछे छूट जाते है घर के बुजुर्ग अथवा वृद्ध माँ-बाप । जो

माँ-बाप यह 'सोचकर अपने बच्चों' को बडा करके, काबिल बनाते हैं कि वार्धक्य में ये हमारे सहारा बनेंगे, वे बिल्कुल अकेले और अनाथ रह जाते हैं । लेकिन अपने बच्चों के प्रति घोर प्रेम और वात्सल्य के कारण इस अकेलेपन और अनाथत्व को सहने केलिए वे तैयार हो जाते हैं । समकालीन कहानीकारों ने ऐसे माहौल में घुटते कई वृद्ध माँ-बाप की समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

वर्तमान समय में घर के पति-पत्नी दोनों पढ़े-लिखे और नौकरी-पेशा होते हैं । इसी कारण से वे बहुत व्यस्त भी रहते हैं । समाज में उन्हें उच्च स्थान भी प्राप्त होता है । लेकिन समाज के कल्याण केलिए दौड़ते यह नई पीढ़ी अपने परिवार के और परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति जो कर्तव्य है, उसे बिल्कुल भूल ही जाते हैं, विशेषकर अपने माँ-बाप के प्रति होते कर्तव्यों को । उनके लिए वृद्ध माँ-बाप बिल्कुल बेकार की चीज़े है । जगदीश नारायण चैबे की कहानी 'दादी का कम्बल' के पति-पत्नी दोनों अच्छी नौकरी में है । ऑफिस के बाद भी वे अन्य कार्यक्रमों में व्यस्त रहते हैं । किसी के दुख-सुख पूछने केलिए उनके पास समय ही नहीं रहता। यहाँ तक कि अपनी बूढ़ी माँ का ईलाज कराने तक समय नहीं होता । रतन को अपनी दादी से बहुत प्यार है और वह ही अपनी दादी का ख्याल भी रखता है । रतन के माँ-बाप ने दादी को यहाँ तक बोझ मान लिया है कि उन्हें दूसरों के साथ बैठकर खाने-या मन बहलाने तक की इजाजत नहीं है । कई-कई

दिन तो रतन और दादी दोनों खाए बिना भी सो जाते हैं क्योंकि घर में कुछ बनाया हुआ नहीं होता । "उस रात रतन के साथ दादी भी बिना खाये ही सो गयी । निराहार । कॉलेज से आकर मम्मी को एक सेमिनार में जाना था । पापा गाडी से पहूँचाने गए थे । सात बजे तक लौटना था । ग्यारह बजे रात में लोग लौटे । खाकर ही लौटे होंगे ।"[1] कहानी की यह समस्या आज की आधुनिक परिवार की ही समस्या है । जब घर के पति-पत्नी दोनों नौकरी में व्यस्त हो जाते हैं तो घर पर अकेले रह जाते हैं बच्चे और बूढ़े । बच्चों से हटकर बूढ़ों के अपनी शारीरिक समस्या भी होती है । शारीरिक व्यथाओं के साथ-साथ यह मानसिक पीड़ा उन्हें चूर-चूर कर देती है । वर्तमान समय में पति-पत्नी दोनों की नौकरी के बिना घर चलना मुश्किल है । लेकिन अपने बाहरी कामों पर देते ध्यान हमें घर में भी देना अनिवार्य है । अन्यथा घर के बच्चे भी वही करेंगे जो हम अपने माँ-बाप के साथ कर रहे हैं जैसे कि रतन ने किया । अपनी दादी के साथ होते व्यवहारों को देखकर वह गुस्सा हो जाता है । वह अपने बक्से में कुछ पुरानी और फटी चीज़ों को समेटता है और अपने माँ-बाप से कहता है - "यह देखिए मम्मी! आपके लिए दादी वाला पुराना कम्बल बक्से में रख दिया है । जब आप बूढ़ी हो जाएँगी तो मैं यही आपको ओढ़ने केलिए दूँगा । यह थाली और गिलास है । आपके हाथ जब काँपने लगेंगे तो इसी में आपको खाना दूँगा । प्लेटें नही टूँटगी

1. (सं) डॉ. शिवनारायण, दादी का कम्बल, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 28

हमारी । और पापा! आपके लिए दादा वाला कोट रख दिया है । जब आप बूढ़ों हो जाएँगे तो मैं दूँगा । आप इसे ही पहनिएगा । पचास साल से ज़्यादा पुराना है । मगर तासीर नहीं गयी है । पसीना छूट जाएगा ।"[1]

मनुष्य बहुत स्वार्थी होता है । कितना भी मिले उसे तृप्ति नहीं होती। वह अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए दौड़ता ही रहता है और कुछ भी करने केलिए राजी हो जाता है । इसका आरंभ वह अपने परिवार से ही करता है। जिन माँ-बाप ने उसे पाल-पोसकर बडा किया, काबिल बनाया, सबसे पहले उन्हें ही वह अकेले छोडकर कई और चल बसता है । वहाँ वह अपनी दुनिया बसाता है और कभी मोडकर उन लोगों को देखता तक नहीं जिन लोगों ने उसे इस जगह तक पहुँचाया उलटा बाकी कुछ जो उनके पास शेष है उसे भी छीन लेना चाहते हैं । शरद सिंह की कहानी 'बन्द घडी' की अम्मा के चार-चार बेटे हैं । फिर भी वह घर पर अकेली है । चारों बेटों ने शहर में नौकरी के वास्ते अपना घर बसा लिया और अम्मा को गाँव अकेला छोड दिया । अब उनकी देखभाल पडोसी ही करते हैं । अम्मा को हर बार लगता है कि कोई तो बेटा उसके पास रहने केलिए ज़रूर आएगा । लेकिन कभी ऐसा होता नहीं । यहाँ तक उसके बीमार होने पर भी कोई पूछने नहीं आता। फिर भी अम्मा को अपने बेटों से बहुत प्यार है । बच्चे जब माँ-बाप को छोड़कर चले जाते हैं तो हर माँ-बाप यही सोचता है कि कभी तो वे उसके

---

1. (सं) डॉ. शिवनारायण, दादी का कम्बल, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 32

पास वापस आ जाऐंगे । हर बार वे गलत ही साबित होते हैं फिर भी उनकी प्रतीक्षा रहता है । ऐसी बूढ़ों का एकमात्र सहारा या तो नौकर होता है या फिर पडोसी । हमारे चारों और कई ऐसे वृद्ध लोग भी रहे हैं जो बच्चों के इन्तज़ार में नौकरों की गोदी में प्राण त्यागते हैं । कुछ लोगों की दशा तो इससे भी दर्दनाक है । कभी-कभी उस अकेले घर में उनकी मृत्यु तक हो जाती है और किसी को उसका पता तक नहीं चलता जब तक शरीर सडकर बदबू आने नहीं लगती है । तब भी बच्चों केलिए इन लोगों को देने लायक समय नहीं होता और उनकी शेष-क्रिया भी किसी अन्य के हाथों ही होती है । कुछ अन्य लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें इन वृद्धों का ख्याल रहता है तब तक जब तक उन्हें उनकी पूरी सम्पत्ति मिल जाती है । 'बंद घडी' की अम्मा भी कुछ ऐसी ही हालत से गुजरती है । सालों बाद जब उसका छोटा बेटा आता है तो वह बहुत खुश होती है । लेकिन जैसे ही उसे उसका आने का मकज़द पता चलता है वह आवाक् रह जाती है । बेटा चाहता है कि वह घर जहाँ वह सालों से रहती आ रही है उसे बेचा जाए । वह कहता है - "कुछ दिन यही किराये के मकान में रह लेना फिर सद्भावना नगर में अपने प्लाट पर मकान बनते ही वहाँ चली चलना ।"[1] अम्मा के अकेलेपन भरी ज़िन्दगी में उनकी एकमात्र संपत्ति वह मकान था और अब बच्चे उसे भी बेचना चाहते हैं, माँ की इच्छा और इज़ाजत के बिना । उन लोगों केलिए पुराना सब कुछ गदे

1. बंद घडी, नई धारा, अप्रैल-मई 2010, पृ. 100

होते हैं । माँ पूछती है - "क्या सब पुराना गंदा होता है, बेटा? ज़रा सोचो, जब तक तुम्हारे बच्चे बडे होंगे तब तक तुम्हारी वो नई कॉलोनी पुरानी हो चुकी होगी ।"[1] माँ के इस कथन में सब कुछ छिपा है, उसका अकेलापन उसका दर्द और उसकी असहमति । यह बेटे को बुरा लगता है और वह हमेशा केलिए माँ को छोडकर चला जाता है ।

अमीर बेटे के महल जैसे घर में दम घुटते वृद्ध बाप की कहानी है निरुपमा राय की 'चलो, एक बूढे की कथा सुनते हैं ! नई पीढ़ी की यही सोच होती है कि बहुत सारे पैसे और सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होना ज़िन्दगी की खुश हाली है और वे ये सब जुटाने में लगे रहते हैं । वे लोग यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि मन की खुशी केलिए इन सबकी कोई ज़रूरत नहीं है । घर में भरे पडे मेज़-कुर्सी मानसिक सुख-शांति प्रदान नहीं करती । इसकेलिए एक दूसरे का साथ और अपनापन चाहिए । दौलत के पीछे भागती नई पीढ़ी से जब कोई पुरानी पीढ़ी इसकी माँग करती है तो उनसे यही पूछा जाता है कि इस घर में आप को किस चीज़ की कमी है । वे यह भूल जाते हैं कि उस घर में सिर्फ उन्हीं की कमी है । बूढ़े माता पिता सिर्फ उन्हीं का साथ चाहते हैं । कहानी का दादा भी कुछ ऐसा ही अकेलेपन भरी ज़िन्दगी जीता आ रहा है । कहने केलिए बेटे के घर में सब कुछ उपलब्ध है, सारी सुख-सुविधाएं। लेकिन उनकी ओर ध्यान देनेवाला कोई नहीं है । रोज़ की एक ही ज़िन्दगी से वह ऊब गया है । रोज़ भ्रमण पर जाना, वापस आकर चाय पीने

1. बंद घडी, नई धारा, अप्रैल-मई 2010, पृ. 100

के साथ-साथ समाचार पत्र पढ़ना और सभी के चले जाने पर अकेले बैठे बार-बार समाचार पत्र पढ़ना, दोहराना आदि । दादा केलिए कोई उपलब्ध नहीं है । एक समय था जब बच्चे बुजुर्गों के पास कहानी सुनने या मस्ती करने आ जाते । लेकिन आधुनिक समाज इतना आगे निकल गया है कि आजकल कहानी ओर मस्तियाँ भी पैसों पर बिकती हैं, तो मुक्त की चीज़ों की ज़रूरत ही नहीं पडती । जो चीज़ें नई पीढ़ी के लिए फालतू और बेकार लगती थीं दादा उसका कीमत जानता था । उन्हें मालूम था कि जिन चीज़ों के पीछे ये ज़माना भाग रहा है वह केवल एक मरीचिका है । जीवन की अन्तिम वेला में यह कुछ भी साथ देनेवाला नहीं है । इसी कारण वे कभी-कभी अपने बेटे से भी कहते हैं - "दिन-रात कोल्हू के बैल की भांति क्यों काम में जुटे रहते हो ? कभी तो दो क्षण चैन की साँस ले बेटा । पत्नी-बच्चों से हँसो-बोलो, बूढ़ें बाप का हाल-चाल पूछो । कुछ अपनी सुनाओं-कुछ हमारी सुनो । ये क्या सुबह से शाम तक चकरधिन्नी की तरह नाचते रहते हो ? आखिर मैंने भी चालीस वर्ष तक नौकरी की है ।"[1] लेकिन बाप की बात वह कभी समझता ही नहीं । दादा इसी प्रतीक्षा में रहता है कि कोई उसे सुननेवाला कभी आएगा ।

उसी प्रकार बेटे से बिछुडकर गांव में अकेली रहती माँ की कहानी बताती है मन्नु भण्डारी की 'मजबूरी' । बेटा जब सालों बाद गाँव आने की बात करता है तो वह बहुत खुश हो जाती है । अपनी सारी कमज़ोरियों को

1. चलो, एक बूढे की कथा सुनते है, नई धारा अप्रैल-मई 2010, पृ. 144

भूलकर वह तैयारियाँ करने लगती हैं । माँ-बाप ऐसे ही होते हैं । बच्चे चाहे कितना भी उन्हें अकेला छोड दे, अनाथ बना दे, फिर भी उनके प्रति उनका प्रेम बढता रहता है । हाँ ये बात तो है कि बीच-बीच में वे अपनी अवस्था को कोसते हैं, लेकिन इस अवस्था के कारण वालों से कभी नहीं रूटते । अम्मा की तैयारियाँ देखकर पडोसियाँ जब हैरान होते हैं तो वह कहती है - "देख नर्बदा, मेरे रामसुर केलिए कुछ मत कहता । यह तो मैं जानती हूँ कि तीन-तीन बरस मुझसे दूर रहकर उसके दिन कैसे बीतते है, पर क्या करे, नौकरी तो आखिर नौकरी ही है । मेरे पास आज लाखों का धन होता तो बेटे को यों नौकरी करने परदेश नहीं दूरा देती।"[1] माँ का हृदय ऐसा ही होता है। हर माँ यही चाहती है कि उसका बेटा काबिल और सही-सलामत रहे, चाहे इसकेलिए उसे कितना भी कष्ठ उठाना पडे अथवा अकेला रहना पडे । अपने बच्चों की खुशी केलिए वह सब कुछ सहने केलिए तैयार रहती है । फिर भी बेटे से मिलते ही वह अपना दर्द कह ही देती है -"देख रामेसुर, यह तीन-तीन बरस तक घर का मूह न देखने वाली बात अब नहीं चलेगी । साल में एक बार तो आ ही जाया कर मेरे लाल। नौकरी की जगह नौकरी है, और मां-बाप की जगह मां-बाप! मेरी तबीयत भी ठीक नहीं रहती, किसी दिन भी आँख मूंदी रह जाएगी तो मैं तेरी सूरत को भी तरस जाऊँगी । सो कम से कम अपनी इस बुढ़िया माँ को...।"[2] अम्मा के इस कथन में उनका दर्द,

---

1. मन्नू भण्डारी, मज़बूरी, मेरी प्रिय कहानियाँ- पृ. 18
2. वही - पृ. 22

शिकायत और अकेलेपन सब कुछ विद्यमान है जिसे नई पीढ़ी कभी नहीं समझती । वह इतना स्वार्थी बन गई है कि उसके हर कर्म के पीछे कुछ लक्ष्य की इच्छा रहती है । अम्मा का बेटा भी सालों बाद गाँव कुछ ऐसे ही लक्ष्य से आया हुआ है । उसे अपने बडे बेटे को अम्मा के हाथों छोड़ना है क्योंकि उसकी पत्नी पेट से है । अम्मा केलिए यह बात स्वर्ग के समान लगता है क्योंकि उसकी ऊब भरी ज़िन्दगी में उसे जीने का एक मकसद और सहारा मिल रहा है । वर्तमान नई पीढ़ी के लिए यह एक साधारण सी बात है कि सालों अपने बूढ़ें माँ-बाप को अकेले छोड़ना और जैसे ही कुछ ज़रूरत पडे तो उनकी हालत और कमज़ोरियों को देखे बिना बच्चों को उनके हाथों छोड़ जाना । वे ये जानबुझकर सोचते नहीं है कि जो माँ-बाप खुद अपने ख्याल रखने में तक्लीफ महसूस करते हैं, वे इन छोटे बच्चों की क्या देख-भाल करेंगे । उनके लिए तो किसी भी हालात में बोझ उतारना ही आवश्यक है, चाहे वह बूढ़े माँ-बाप हो या मासूम बच्चे । लेकिन वृद्धों केलिए अपनी पोते-पोती का साथ होने से बढ़कर कुछ भी नहीं होता और उनके प्रति अपने वात्सल्य के कारण वे उन्हें अपने पास रख भी लेते हैं ये समझे बिना कि कुछ बडे होते ही इन बच्चों को भी उनसे अलग किया जाएगा । अम्मा के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है । रामेसुर का दूसरा बेटा बडा होते ही बेटू को वापस लिया जाता है । यहीं नही उसके बिगडे आदत केलिए अम्मा को दोषी ठहराया भी जाता है । इस प्रकार अम्मा फिर से अकेला जीवन जीने केलिए बाध्य रह जाती है ।

विदेशों में नौकरी

किसी भी व्यक्ति के लिए विदेश में नौकरी मिल पाना भाग्य की बात मानी जाती है । चाहे वह बूढ़े-माँ-बाप हो और खुद नौजवान हो । पैसा कमाने और समाज में नाम कमाने केलिए इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, ऐसे अधिकतर लोग सोचते ही हैं । किसी भी तरह पढ़ा-लिखाकर माँ-बाप भी अपने बच्चों को विदेश भेजने केलिए उत्सुक रहते हैं । अपना सब कुछ बेचकर भी वे इसकेलिए तैयार हो जाते हैं । अपनी पूरी संपत्ति लुटाकर यहाँ तक घर बेचकर भी वे बच्चों को विदेश भेज देते हैं । वे सोचते हैं कि जैसे ही बेटा कमाने लगेगा वापस सब कुछ बनाया जाएगा । लेकिन अक्सर ऐसा नहीं होता है । विदेश में पहुँचते ही बच्चों में बिल्कुल बदलाव आ जाते हैं। जिस माता-पिता ने इतना कष्ट उठाकर उन्हें वहाँ भेजा, उनको वे अकेले तो छोडते ही हैं साथ ही उनके प्रति जो कर्तव्य है उसे भी भूल जाते हैं । ये बूढ़ें माँ-बाप अपनी बाकी की ज़िन्दगी किराए के घर में बिताते हैं और अपनी किसमत को कोसने लगते हैं । मृदुला गर्ग की कहानी 'लौटना और लौटना' के वृद्ध माँ-बाप ने भी बहुत अरमान रखते हुए ही अपने बेटा हरीश को विदेश भेजा था । आज सालों बाद वह अमरिका से भारत लौटा है तो उसे यहाँ के कोई भी तौर-तरीके और रीति-रिवाज़ पसंद नहीं आता । यहाँ तक अपना घर भी । सब चीज़ों से उसकी शिकायत रहती है । माँ को उसके इस व्यवहार से क्रोध आता है लेकिन पिता उन्हें शांत कराता है क्योंकि उन्हें

लगता है कि शेष की ज़िन्दगी बेटा उनके साथ बितानेवाला है । उनको डर है कि इस प्रकार क्रोध होने से कहीं वह वापस न चला जाए। वह कहता है - "यहाँ टिकेगा तो अपना घर बन जायेगा । काफी रुपया लाया होगा वहाँ से । वरना अब की गया तो किसी अमेरिकन के साथ वहीं बस जायेगा ।"[1] बेटे की हर बात को पिता अन्देखा करता है, यहाँ तक उनके साथ बैढ़कर सिगरेट पीने से भी वह उसको मना नहीं करता । पिता की यह सहमति बेटे को इस हद तक पहूँचा देती है कि वह अपनी शादी की माँग खुद करता है और कहता है कि उसे डॉक्टर लडकी चाहिए, चाहे वह गोरी हो या काली लेकन सेक्सी होनी चाहिए । उसे न अपने माँ-बाप के सामने बात करने की तमीज़ होती है और न अपनी संस्कृति और सभ्यता की परवाह होती है । हरीश का पापा सब कुछ मान लेता है । लेकिन उन्हें धक्का तब लगता है जब उन्हें पता चलता है कि बेटा वहाँ रुकने वाला नहीं है और वह वापस अमरिका जा रहा है । माँ निराशा होकर बेटे से कहती है - "अरे वही क्या सोना बरसे है ? पांच बरस में आये हो, अब यहीं बसो, हमारे बुढापे का सहारा बनो।"[2] लेकिन वह नहीं मानता । शादी करके जाते-जाते वह बनाया मकान को किराये पर चढ़ा देता है और किराये के रुपये को अपने नाम बैंक में जमा कराने का बंदोबस्त भी कर देता है । हरीश वर्तमान नई पीढ़ी केलिए उत्तम उदाहरण है जो सिर्फ अपना सोचता है और हरीश के बूढ़ें माँ-बाप

---

1. मृदुला गर्ग, लौटना और लौटना, संगति - विसंगति, पृ. 24
2. वही - पृ. 26

अकेले ठहरे गए आज के वृद्ध समूह के लिए उदाहरण है जो अनजाने ही अपने बच्चों पर भरोसा कर बैठते है ।

विदेशी औरत से शादी करके वहीं बसे बेटे और यहाँ बेसहारा पडे माँ-बाप की कथा है मृणाल पाण्डेय की 'दोपहर में मौत' कहानी में । शादी के बाद बेटा कभी अपने माँ-बाप के पास आता नहीं है यह कहकर कि उसकी पत्नी और बच्चों को वहाँ का महौल पसंद नहीं आएगा । वह अकेला ही कभी-कभी आ जाता और आते वक्त घर के लिए भर-भरके समान खरीदता । नई पीढ़ी की यही सोच रहती है कि जो स्नेह वह अपनी मौजूदगी से नहीं दे सकती है उसे पैसों और सामानों के ज़रिए दिया जाए । इसी कारण जब भी कोई विदेश से आता है तो वहाँ की कई चीज़ें लाता है और सबके मुँह चुप करा देता है । हमारे यहाँ के लोग भी इस तरह के व्यवहार से खुश ही रहते है । वे ये मान लेने को तैयार हो जाते हैं कि इन बच्चों को उनके प्रति बहुत गहरा प्रेम है, इसी कारण यह सब चीज़ें लाई गईं हैं । लेकिन जिन चीज़ों की ज़रूरत रहती है, उसकी कोई पर्वाह ही नहीं रखता । कहानी के बूढ़े माँ-बाप के लिए भी सब कुछ ठीक था जब तक एक दुर्घटना में उनके बेट की मौत नहीं हो जाती । उनका एकमात्र सहारा था उनका बेटा । बेटे की मृत्यु के बाद वे एक प्रकार के जडवत् जीवन बिताने केलिए बाध्य हो गये थे । वे इतने अकेले पड गए थे कि किसी को उनकी उपस्थिति की तक खबर नहीं थी । कोई उनको पूछने तक नहीं आता था । जनार्दन के वहाँ

पहुँचना और उनसे कुछ देर बात करना उनकेलिए जान वापस मिलने के समान था । यह एक साधारण सी बात बन गई है कि जब घर में कोई बूढ़ा अकेला रह जाता है तो उसे पूछने वाला कोई नहीं होता । न उसके अपने न गैर । वे उस चार-दीवारी के अन्दर एक प्रकार की चेतनाहीन ज़िन्दगी बिताते हैं और फिर मर मिटते हैं । किसी भी नई पीढ़ी केलिए उनके साथ समय निकालना व्यर्थ की बात लगती है । जनार्दन को भी लगता है कि वह वहाँ जाकर फँस गया । लेकिन बूढ़ों केलिए वह बहुत खुशी की बात थी और वे बोलते जा रहे थे । वे उससे कहते - "रह गये यहाँ हम जटायु जैसे पंख-हीन। किस आसरे ? किसलिए होता है ये सब ऐसा?"[1] बूढ़े के वाक्य में उनका पूरा दर्द विद्यमान है । लेकिन जनार्दन को वहाँ दम घुटने लगता है और वह चलने का बहाना बनाता है । तब वृद्ध कह उठता है - "इस शहर में काम-ही-काम है । तुम चले आये यही बहुत हुआ।"[2] उनको अचानक महसूस होता है कि जिनकी दुनिया में कोई नहीं रहा और जिनसे दुनिया वालों को कोई फायदा नहीं रहा, उन तक कोई कुछ क्षण केलिए आए यही बडी बात है ।

वैधव्य

वैधव्य हर किसी केलिए एक बहुत बड़ी समस्या है, चाहे वह आदमी हो या औरत, और बूढ़ों केलिए तो वह मृत्यु समान ही रहेगा । "वैधव्य एक

1. मृणाल पाण्डेय, दोपहर में मौत, यानी कि एक बात थी,, पृ. 246
2. वही, पृ. 249

एसी स्थिति है जो युवा या वृद्ध, नव या पुरातन किसी को भी बिना चेताए आती है ।"[1] हर किसी केलिए किसी का साथ होना आवश्यक है, क्योंकि ज़िन्दगी अकेलापन में बिताना कठिन बात होती है । जिनके साथ हम अपनी ज़िन्दगी बिताते आए हैं, उनका एकदम से मृत्यु हो जाना किसी केलिए भी असहनीय होता है । इसी कारण अपने मायूसी और अकेलेपन से बचने केलिए सब कुछ न कुछ उपाय निकाल लेते हैं । कुछ लोग दूसरी शादी कर लेते हैं तो कुछ लोग अपनी दोस्ती और पहचान बढ़ाते हैं, तो कुछ लोग कहीं न कहीं अपने को व्यस्त रखते हैं, क्योंकि साथी की मृत्यु के बाद भी जीवत व्यक्ति को अपनी ज़िन्दगी आगे की ओर बढ़ानी है । लेकिन वार्धक्य में पहुँचे किसी भी व्यक्ति केलिए यह सब उपाय हमेशा मुमकिन नहीं है । अधिकतर वृद्ध अपने साथी की मृत्यु के उपरान्त दूसरी शादी करना नहीं चाहते और यदि चाहते तो भी उनकी परिवार और समाज उसे होने नहीं देगा । शारीरिक तौर से कमज़ोर होने के कारण ही बाहर जाना और दोस्ती बढ़ाना भी उनकेलिए मुश्किल रहता है और जहाँ तक अपने को व्यस्त रखने की बात है, परिवार में उनके लायक कोई या कुछ होते ही नही जिससे वे अपने को व्यस्त रखे । वर्तमान समय में अणु परिवार की व्यवस्था रहने के कारण ही घर के बेटा-बहू और बच्चे तो अपने कामों में या दोस्तों के साथ व्यस्त रहते हैं । इसी कारण घर के बूढे अकेले ही रहते हैं । इस प्रकार शारीरिक

1. वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 16

कमज़ोरी के साथ-साथ वे मानसिक रूप से भी थक जाते हैं । यह शारीरिक एवं मानसिक थकावट उन्हें एक प्रकार के अनाथत्व की पीड़ा में धकेल देता है । समकालीन कहानियों में इस प्रकार के अकेलेपन से पीड़ित कई वृद्धों के चित्र को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है ।

मदन मोहन की कहानी 'बूढ़ा' में एक बूढ़े के अकेलेपन का अच्छा चित्रण हुआ है । वह अपने बेटे के साथ रहता था, जिसका खुद का परिवार था और वे आपस में ही घुलमिलते थे । बूढे के लिए उनकी ज़िन्दगी या घर में कोई स्थान नहीं था । उनकी पत्नी का बहुत सालों पहले ही देहांत हो गया था । पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने एक प्रकार का मौन धारण कर लिया था। वृद्धावस्था में पति-पत्नी का साथ होना बहुत ज़रूरी होता है क्योंकि वे ही दो व्यक्ति हैं जो एक-दूसरे को समझ सकते हैं और दुःख-दर्द बाँट सकते हैं । किसी भी नई पीढ़ी केलिए उन्हें समझना और उनके मुताबिक कार्य व्यवहार करना कठिन बात है । घर के अकेलेपन में भी वे ही एक दूसरे के सहारा बन सकते हैं । लेकिन जैसे ही कोई एक की मृत्यु हो जाती है तो ज़िन्दगी आगे बढने में मुश्किल लगने लगती है । बूढे के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है । पत्नी की अचानक मृत्यु उन्हें निराशा और एकाकीपन में घसीट देती है। जो उन्हें शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों से कमज़ोर कर देता है - "माँ के निधन के बाद बूढ़ा जर्जर हो गया था । हालात इतनी बिगड चुकी थी कि उसके लिए बोल-बतिया पाना दुश्वार हो गया था ।अब बूढ़ा यदि बोलता भी

तो किसी को सुनायी नहीं पड़ता ।"[1] समाज में अधिकतर बूढ़ों की यही स्थिति होती है । साथी की मृत्यु के बाद वे अपने अवसर के इंतज़ार में शेष ज़िन्दगी काटते हैं।

कलानाथ मिश्र की कहानी 'पार्क' के जगदीश बाबू भी पत्नी की मृत्यु के बाद ज़िन्दगी में बहुत अकेले पड गए हैं । बच्चों ने उन्हें ठुकरा दिया है। अपनी मायूसी भरी ज़िन्दगी में उन्हें थोडा चैन मिलता है, जब वे पार्क में अपना वक्त गुज़ारते हैं । यद्यपि अपने अकेले की ज़िन्दगी से उन्हें नफरत है फिर भी वे खुश हैं कि उनकी पत्नी की मृत्यु पहले हो गई । वे कहते हैं - "मेरी पत्नी को मरे पाँच साल हो गए। तब से जैसे इस दुनिया में अकेला पड गया । सोचता हूँ अच्छा ही हुआ । वह मेरे रहते चली गई । नहीं तो उसे और ज़्यादा कष्ट होता ।"[2] जगदीश बाबू जानते हैं कि एक पुरुष होने के नाते उनका हृदय अधिक कठोर होता है, उतना स्त्रियों का नहीं । यदि उनकी जगह उनकी पत्नी जीवित रहती तो उन्हें अधिक कष्ठ होता । क्योंकि अपने द्वारा पाला-पोसा बच्चों द्वारा अपमान और तिरस्कार कोई भी माँ सह नहीं सकती है । उसका हृदय अधिक कोमल होता है । लेकिन अपनी ममता के कारण वह चुप-चाप सब कुछ सह लेगी । इसी कारण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों केलिए ही वैधव्य बडी समस्या रहेगी । वैधव्य के कारण स्त्रियों को

---

1. बूढ़ा, नईधारा अप्रैल-मई 2010, पृ. 103, 104
2. पार्क, नई धारा, अप्रैल-मई 2010, पृ. 113

होनेवाली समस्याओं के बारे में अरुण पी. बाली ने लिखा है कि - "वैधव्य को एक लोछन की तरह माना जाता है । एक वृद्ध विधवा केवल इसलिए कष्ट नहीं झेलती कि वह विधवा है, बल्कि इसलिए भी कि वह वृद्धा है । वैधव्य के कारण वृद्ध महिलाओं को सामाजिक बिलगाव झेलना पडता है । पति की हानि के साथ-साथ स्वास्थ्य व आर्थिक ह्रास से उनके जीवन के दबाव दोहरे हो जाते है । वैधव्य से वृद्ध महिलाओं की आर्थिक निर्भरता अपने पुत्रों पर बढ़ जाती है जिससे उनमें और खासकर पुत्रवधुओं में तकरार संभव है ।"[1]

राजी सेठ की कहानी 'उसका आकाश' के पिता को लगता है कि यदि उनकी पत्नी जीवित रहती तो उन्हें ये कष्ट, अपमान और अकेलापन सहने नहीं पड़ते । अपने पुत्र के घर में केवल एक कमरा ही उनका अपना है । उनकी देख-भाल रखनेवाला कोई नहीं होता । पूरा दिन वे खिडकी से आकाश को निहारता, लैटा रहता और अपने पत्नी को याद करता । वे सोचते - "यह बीच रास्ते में अकेला छूट जाने... आधे जीवन आधी मृत्यु को एकसाथ झेलने की अग्नि-परीक्षा है, वह भी उसके बिना... उसके अधिकार ममत्व, दीप्ति, प्रीति के बिना । वह होती तो उसे रोज़-रोज़ बडी बहू का सामना न करना पडता, रोज एक अनाम से तिरस्कार की पैनी अनी से छिदना न होता ।"[2] अक्सर यही होता है कि जब तक वैवाहिक बन्धन में

1. वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 16
2. (सं) गिरिराज शरण, उसका आकाश, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 96

किसी एक की मृत्यु नहीं हो जाती, तब तक एक दूसरे की आवश्यकता की ज़रूरत भी हमें समझ नहीं आती । उसी प्रकार सूर्यबाला की कहानी 'सौगात' के बाप अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उसकी याद में आगे की ज़िन्दगी काटता है । गिरिराजशरण अग्रवाल के 'बूढ़ा ज्वालामुखी' आदर्श मदान की 'सांझ का परिन्दा', राजी सेठ की 'उतनी दूर' आदि कहानियों में भी वैधव्य की समस्या विद्यमान है ।

सेवानिवृत्ति

सेवा-निवृत्ति होना वृद्धों के लिए एक बहुत बडी समस्या है । यद्यपि सेवा-निवृत्ति का लक्ष्य नीरस काम, थकान तथा प्राधिकारी के हुकुमों से छुटकारा पाना है फिर भी यह इस बात का संकेत भी है कि व्यक्ति के श्रम-बल में उपयोगिता या उत्पादकता अब नहीं रही । सेवानिवृत्ति के साथ ही आय भी घटने लगती है । इसी के साथ-साथ जान पहचान के लोग और दोस्त भी गायब होने लगते हैं । सेवानिवृत्ति होने की सबसे बडी समस्या है अकेलेपन और खालीपन । जो व्यक्ति पूरा दिन कामों में व्यस्त रहता था उसकेलिए किसी चारदीवारी के अन्दर चौबीसों घंटे बेकार बेठे रहना कठिनाई की बात है । यह एक प्रकार का खालीपन उस में भर देता है । इसके अलावा इन वृद्ध लोगों को आर्थिक कठिनाइयों से भी गुज़रना पडता है । आय के कम हो जाने के कारण ही इन लोगों को अपनी आवश्यकताओं

की पूर्ति केलिए बच्चों पर निर्भर होना पडता है । जो बच्चे इनके पैसों में पले -बडे हुए हैं, इनके वार्धक्य में सहारा देने से पीछे हटने लगते हैं । जिनकेलिए इन वृद्ध माँ-बाप ने अपनी सारी ज़िन्दगी बर्बाद करके पैसा कमाया, उन्हें बडा किया, उन माँ-बाप को सहारा देने केलिए वे तैयार नही बनते । उनकेलिए वे अब केवल एक बोझ मात्र रह जाते हैं । इसी कारण अधिकतर बुजुर्ग लोग सेवानिवृत्त होने के बाद भी कहीं-न-कहीं दूसरी नौकरी ढूँढ निकाल लेते हैं जिससे बच्चों के आगे हाथ फैलाना न पडे और खुद के भी समय कट जाए ।

रिटायर्ड हो जाने के बाद अधिकतर माँ-बाप अपनी सारी संपत्ति बच्चों के बीच बाँट देते हैं और सोचते हैं कि शेष की ज़िन्दगी उनके साथ आराम से बिताएँगे । लेकिन अक्सर ऐसा ही होता है कि उनकी पूरी संपत्ति मिल जाने के बाद बच्चे उन्हें ठुकराने लगते हैं । उनके लिए वे सिर्फ फालतू की चीज़ रह जाती है । उन्हें एक अनुपयोगी चीज़ मानकर किसी कोने में ढ़केल देते हैं । ऊर्मिला शिरीष की कहानी 'बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु! के पापा रिटायरमेंट के बाद बिल्कुल टूट जाते हैं । किसी को उनकी पर्वाह नहीं रहती यहाँ तक उनकी पत्नी को भी । सबकी नज़र केवल उनकी संपत्ति पर ही रहती है । उन्हें लगता है कि रिटायेर्ड हो जाने के बाद वे बिल्कुल बेकार रह गये । "रिटायरमेंट के बाद उन्होंने अपना सब-कुछ प्रिय बेटों के

बीच बाँट दिया था, ये सोचकर कि उन्ही के साथ स्वयं को जोडकर काम करते रहेंगे । बेटे बाहर का काम देखेंगे, वे अन्दर की व्यवस्था सँभाल लेंगे। लेकिन कुछ समय बाद ही उन्होंने महसूस किया कि वे वहाँ कहीं नही है।"[1] अपनी पत्नी और बेटों द्वारा तिरस्कार, उन्हें एक प्रकार के तनाव में डाल देते हैं और वे रोगग्रस्त हो जाते हैं । पैसों पर मान रखनेवाली नई पीढ़ी केलिए इस प्रकार घर बेकार बैठे माँ-पिता बोझ के सिवाय कुछ नहीं होते । जब तक उनकी कमाई रहती है तब तक प्यार और इज्जत रहती है । यह जानते हुए ही कुछ लोग थोडा सा पैसा अपनेलिए बचाकर रखते हैं । रिटायरमेंट एक प्रकार की असुरक्षा की भाव ला देता है । बुजुर्गों को कहीं न कहीं यह डर रहती ही है कि यदि उन्हें घर से कहीं निकाल दिया जाएगा तो क्या होगा। लेकिन यह बात नई पीढ़ी केलिए पचती नहीं । वे उस थोड़े से रकम केलिए भी लडना शुरु कर देते हैं । यहाँ पापा का कहना वांछनीय है - "जो है वह भी दे दे ताकि मेरे मरने पर अन्तिम-क्रिया के लिए पैसे तक न बचे । तुम लोगों का क्या भरोसा, उसी समय लड़ने बैठ जाओ या हिसाब करने लगों कि कौन लकडियाँ लाएगा, कौन बाँस । बस इतना ही पैसा है मेरे पास कि मेरी अन्तिम-क्रिया आराम से हो जायेगी ।"[2] उनका यह कहना वर्तमान समय के सभी बुजुर्गों का कहना है ।

---

1. डॉ. शिवनारायण, बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु! वृद्ध जीवन की कहानियाँ, पृ-. 58
2. वही, पृ. 59, 60

'रिटायरमेंट' कहानी के 'एकाउण्टेण्ट' का हाल कुछ और ही है । उनका रिटायर्ड होना किसी को पसंद नहीं आता । रिटायरमेंट हो जाने का दर्द कोई उनके साथ नही बाँटता । पत्नी उनका मज़ाक उठाती है और बेटा दूसरी नौकरी देखने केलिए कहता है । वह कहता है - "पापा आज ही आप रिटायर हुए और आज ही यह नया विज्ञापन एक तरह से आपके लिए समझो। पेंशन और ये सेलरी मिलकर फिर उतना ही अर्न करने लगेंगे आप।"[1] इससे व्यक्त है कि बेटा चाहता है कि घर का आय कम न हो जाए और सारा बोझ उसके सिर पर न आ जाए । वह चाहता ही नहीं है कि पिता अब शेष ज़िन्दगी आराम करे । अर्थ पर केन्द्रित नया समाज बुजुर्गों को केवल पैसा बनाने का यंत्र समझते है । एक ऐसा यंत्र जो कभी थके नहीं और यदि थककर विश्राम के लिए सोचे तो उन्हें बेकार मान लिया जाए । नई पीढ़ी उनके प्रति एक नकारात्मक दृष्टि पैदा कर लेती है । यहाँ तक घर के मुख्या का स्थान भी उनसे छीना जाता है । नई पीढ़ी के लिए रिटायर्ड होने का मतलब है परिवार में अपना स्थान, अधिकार सभी से रिटायेर्ड होना केवल उत्तरदायित्व से नहीं। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू का अपने घर में कोई स्थान नहीं रहता जब वे सालों बाद नौकरी से सेवानिवृत्त होकर लैटते हैं । उनका स्थान 'स्टोर रूम' में आचारो के मर्तबान, दाल, चावल आदि के साथ होता है । बेटे ने घर का अधिकार और

1. स्वाति तिवारी, रिटायरमेंट, अकेले होते लोग, पृ. 116

उनका पद छीन लिया था । किसी भी बात पर अपनी राय देने या पिता होने के नाते किसी पर गुस्सा होने का तक अब उन्हें हक नहीं रहा था । उन्हें लगता है कि वे अपने ही घर में परदेशी बन गए हैं । वे सोचते हैं - "यदि गृहस्वामी केलिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यही है, तो यही पडे रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गयी तो वहाँ चले जायेंगे । यदि बच्चों के जीवन में उनकेलिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह रहेंगे ।"[1] गजाधर बाबू को यकीन हो गया था कि अपने पत्नी और बच्चों केलिए वे केवल धनोपार्जन के सूत्र मात्र थे । जैसे ही उनकी ओर से धन की प्राप्ति रुक गई, वे फालतू बन गए । उनके प्रति बच्चों का व्यवहार भी बदल गया। बेटा कहता - "बूढ़े आदमी है, चुपचाप पडे रहे।"[2] इस प्रकार जो आदमी अपने परिवार के साथ खुशी के साथ बाकी ज़िन्दगी बिताने सोचकर आया था, वह फिर से काम पर जाने का निर्णय ले लेता है । अपने परिवार में जिसके प्रति उम्मीदें जोडकर आया था उसे छोडकर चला जाता है । गजाधर बाबू उन सभी वृद्धों का प्रतीक है जो अपनी पूरी ज़िन्दगी परिवार केलिए बर्बाद कर देती है और बाद में अपने परिवार द्वारा ही उपेक्षित रह जाते हैं।

वृद्ध सदनों का जीवन

आधुनिक समाज ने जब से 'यूस एण्ड त्रो' कल्चर को अपना लिया है तब से घर के बुजुर्गों का भी बेहाल हो गया है । इस परिष्कृत संस्कृति ने

1. (सं) गिरिराज शरण, वापसी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 24
2. वही - पृ. 25

नई पीढ़ी की मानसिकता को बहुत ही बदल डाला है । सभी चीज़ों को वे उपयोगिता के हिसाब से देखने लग गए हैं । जो चीज़ उनके उपयोग की है उसे अपने पास रखते हैं, जो उनके लिए फालतू अथवा अनुपयोगी है उसे फेंक देते हैं । रिश्तों और संबन्धों को भी आजकल वे इस नज़रिए से ही देखते हैं । जो संबन्धें उनकेलिए लाभदायक अथवा काम के हो, वे उनकेलिए मतलब के है और जिन संबन्धों अथवा रिश्तों से उन्हें कोई लाभ नहीं होता, उन्हें वे ठुकरा देते हैं । नई पीढ़ी की इस विकृत मानसिकता का असर सबसे ज़्यादा घर के बूढ़े माँ-बाप पर ही पडता है । जैसे कि नई पीढ़ी अपने पैरों पर खडे होने का लायक बन जाता है, वे इन बूढ़ों को एक बोझ मान लेते हैं । वे ये भी नहीं सोचते कि उन्हें इस काबिल किसने या किसके मेहनत और त्याग ने बनाया । ये लोग बन बूढ़ों को या तो घर के किसी कोने में ढ़केल देते हैं या इन्हें वृद्धाश्रमों में छोड़ देते हैं । बच्चों द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होने के कारण और परिवार में अकेलेपन न सह पाने के कारण कुछ बुजुर्ग तो अपने-आप वृद्धाश्रम चले जाते हैं । क्योंकि वे भी किसी प्रकार बच्चों केलिए बोझ बनना नहीं चाहते । उन्हें लगता है कि एकाकीपन में घरों में उपेक्षित रहने से बेहतर वृद्धाश्रमों का जीवन ही है । ऐसी कई कहानियाँ हैं जो बच्चों द्वारा वृद्धाश्रमों में उपेक्षित अथवा बच्चों द्वारा तिरस्कृत होने के कारण खुद वृद्धाश्रमों में अभय लेते बुजुर्गों की कथा बताती हैं ।

जब माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो बच्चे कोई न कोई वजह ढूँढ लेते हैं उन्हें घर से निकाल देने केलिए । "और बाँध फूट पड़ा' कहानी की अम्मा को सिर्फ इसलिए वृद्धाश्रम छोडा गया क्योंकि वे बीमार हैं । बहू को लगता है कि उनकी बीमारी फैल जाएगी । इसीलिए वह कहती है - 'सरकार ने बीमार बुड्ढों केलिए अलग आश्रम बनवाया है । मेरा ये बापू तुमको छोड़ आएगा ।"[1] असल में यह तो केवल एक बहाना होता है नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी से मुक्ति पाने का । क्योंकि वे जानते हैं कि बीमारी के ईलाज में पैसा निकल जाएगा। तो उससे बचते का सबसे अच्छा तरीका है बीमारी के नाम पर उन्हें कहीं ठहराया जाए । इससे पैसा भी बच जाएगा और दूसरों का मूँह भी बन्द रहेगा । हमारे समूह में ऐसे अनेक माँ-बाप हैं जो इस प्रकार के कारणों सी घर से उपेक्षित हैं ।

कहा जाता है कि जितने अधिक बच्चे होंगे, उतना अधिक वार्धक्य में सहारा मिलेगा । लेकिन आजकल स्थिति बदल गई है, चाहे जितने भी बच्चे हो, वृद्ध माँ-बाप को अपनी ज़िन्दगी अकेले ही बितानी पडती है। 'दूसरा रास्ता' के बाबूजी अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त घर पर बिल्कुल अकेले रह जाते है । उनके दोनों बेटे ओहदे पर है फिर भी वे अपने घर में अकेले रहते हैं । कोई भी उन्हें अपने साथ रखने केलिए, यहाँ तक उनसे एक बार आकर मिलने केलिए तक तैयार नहीं होता । अपने बच्चों से मिलने की चाह

1. स्वाति तिवारी, और बाँध फूट पडा, अकेले होते लोग, पृ. 87

में वे अम्मा की 'बरसी' रखते हैं । वे कहते हैं - "क्या करूं, तुम लोगों को देखने का बहुत मन था- पूरा एक वर्ष गुजर गया तुम्हारी अम्मा को गए पर कोई नहीं आया यहाँ, इसलिए बुलवा लिया ।"[1] बाबूजी का यह दुःख वर्तमान समय के अकेले रहते सभी बूढ़ों की समस्या है । नई पीढ़ी अपनी ज़िन्दगी और कामों में इतने व्यस्त रहते हैं कि उनके पास अपने माता-पिता केलिए थोडा सा भी वक्त नहीं रहता । वास्तव में वे वक्त निकालना ही नहीं चाहते और मां-बाप को ही कोई कारण बनाना पडता है उनसे मिलने केलिए। बाबूजी यह बात अच्छी तरह समझ जाते हैं कि अब उनके बच्चों को उनकी ज़रूरत नहीं है । इसलिए वे अपनी सारी संपत्ति बच्चों के नाम करके वृद्धाश्रम चले जाते हैं ।

जहाँ एक ओर बच्चों द्वारा वृद्धाश्रमों में उपेक्षित अथवा खुद वद्धाश्रमों में शरण लेते वृद्धों का मार्मिक चित्रण होता है, वहीं दूसरी ओर वृद्धाश्रमों की त्रासद दशा का भी वर्णन मिलता है । चित्रा मुद्गल की कहानी 'गेंद' में वृद्धाश्रम के कर्मचारियों द्वारा वृद्धों के प्रति होते क्रूर बर्ताव का वर्णन भी हुआ है । बक्शीश न मिलने के कारण वृद्धाश्रम का नौकर रामेश्वर शिवदासानी के साथ क्रूर व्यवहार करता है और उनपर झूठा इंतज़ाम लगाता है । वह कहते हैं - "मना करने के बावजूद रामेश्वर तंग करने लगा है इधर । गुनगुना दूध मांगो तो फ्रिज का ठंडा दूध सामने लाकर रख देगा । कहो

1. स्वाति तिवारी, दूसरा रास्ता, अकेले होते लोग, पृ. 97

कि इसे तनिक गरम लाओ, नुकसान करेगा तो साफ मना कर देगा । रसोई के चूल्हे खाली नही है । सुबह पूछ के जाएगा कि नाश्ते में दलिया खाना है या कार्नफ्लैक्स दूध? दलिया मांगने पर घंटे भर बाद आकर सूचित करेगा कि दलिया खतम हो गया । कार्नफ्लैक्स दूध खाना चाहे के वह ले आए।"[1] इस प्रकार इन वृद्ध जनों को न अपने घरों में और वृद्धाश्रमों में शरण मिलती है ।

निष्कर्ष

इस प्रकार बढ़ते उम्रवालों के अकेलापन और अनाथत्व संबंधी छोटे से छोटे पहलुओं का अनावरण संजीदगी सी समकालीन वृद्धजीवन पर केन्द्रित कई कहानियों में हुआ है ।

❖ ❖ ❖

1. चित्रा मुद्गल, गेंद, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 57

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का प्रतिरोध

समकालीन हिन्दी कहानियों में वृद्धजनों का प्रतिरोध

समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है । समकालीन साहित्यकारों ने अपने कहानियों, कविताओं, उपन्यासों, नाटकों एवं अन्य विधाओं के ज़रिए इस प्रतिरोधी स्वर को उजागर किया है । इस प्रकार उनके विरोधी स्वर स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श आदि के रूप में हमारे सामने आता है, जिससे समाज के शोषित, पीड़ित, एवं हाशिएकृत समूह को ऊपर उठने और इन यातनाओं के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने का हौसला मिलता है । वर्तमान उपभोक्तावादी समाज में स्त्री एवं दलितों के समान ही तिरस्कृत एवं उपेक्षित वर्ग है - वृद्धजन। वर्तमान समय में परिवार की अवधारणा पति-पत्नी और बच्चों तक ही सीमित रह जाने के कारण, परिवार के बूढ़े बिल्कुल अकेले एवं उपेक्षित हो गए है । पाश्चात्य संस्कृति और भोग-विलासिता के मेल ने वर्तमान पीढ़ी को स्वार्थी बना दिया है । उसकी हर प्रवृत्ति के पीछे लाभ ही उसका मकसद रहता है । इसका सबसे गहरा असर घर के बूढों पर ही पड़ता है क्योंकि वे घर पर फालतू बैठे हैं। बच्चों को उनसे लाभ भी कम ही होता है । इस कारण नई पीढ़ी केलिए पुरानी पीढी बोझ बन गयी है और यह वर्तमान समय की एक जटिल समस्या ही बन गई है । समकालीन साहित्य के पूर्व के साहित्य में भी यह समस्या कहीं न कहीं विद्यमान है । लेकिन वहाँ वृद्ध-जन अपने पर होते अत्याचारों और अपने

एकाकीपन एवं उपेक्षा भरी ज़िन्दगी को अपनी नियति समझकर उसे झेल लेते थे । लेकिन आगे के समय में जैसे-जैसे यह समस्या जटिल बनती गयी, इसके प्रति रचनाकारों का दृष्टिकोण भी बदलने लगा । समकालीन रचनाकारों ने वृद्धजनों पर होते अत्याचारों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठायी और विभिन्न वृद्ध पात्रों के ज़रिए अपने प्रतिरोधी स्वर को व्यक्त किया । इस प्रकार समकालीन संदर्भ के वृद्धजन, परिवार, परिवेश एवं परिस्थिति द्वारा अपने पर होते शोषण को अपनी नियति न मानते हुए उसके खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया जताने लगे । वृद्धजनों का यह प्रतिरोधात्मक स्वर समकालीन कहानियों में बखूबी से चित्रित है ।

जीवन में योजनाबद्ध होना

वार्धक्य तक पहुँचते ही वृद्ध-जन अपने को रिटायर्ड मान लेते हैं और सारा अधिकार और ज़िम्मेदारियाँ बच्चों पर छोड़ देते हैं । वे अपने आगे की ज़िन्दगी में आराम करना चाहते हैं । लेकिन आधुनिक पीढ़ी के अपने प्रति पनपते नकारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए आजकल वृद्धजन जागरूक हो गए हैं । वे किसी भी प्रकार अपने बच्चों के दबाव में आने या उनपर निर्भर होना नहीं चाहते । इस केलिए वे अपने-आप को तैयार बना लेते हैं । अपनी ज़िन्दगी को अपने हिसाब से जीने केलिए वे काबिल बना लेते हैं । साथ ही साथ अपना स्वास्थ्य का भी ख्याल रखने लगते हैं ताकि बच्चों को वे एक बोझ न लगने लगे ।

डॉ. सतीशराज पुष्करणा की कहानी 'सही दिशा की ओर' में रिटायरमेण्ट के बाद अपने को फाल्तू न मानकर अपने आगे की ज़िन्दगी को सही दिशा की ओर बढ़ाते अशोक बाबू का चित्रण हुआ है । घर पर व्यर्थ बैठने के बजाय वे छोटे-मोटे कामों में लगते हैं और पत्नी के साथ रसोई में भी हाथ बढ़ाते हैं । अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए वे हर सुबह सैर पर जाते हैं और हम उम्र के लोगों से दोस्ती करते हैं। अशोक बाबू की पत्नी भी उन्हीं की तरह अपने बुढ़ापे का अच्छा इस्तेमाल करती है । वर्तमान नई पीढ़ी के मनोभाव को समझते हुए वह कहती है - 'आजकल के बच्चे है.. कभी खाली बैठे देखकर कुछ कह ही दे तो... इससे पूर्व कि वे लोग कुछ कहे, हमें अपनी उम्र के हिसाब से अपनी उपयोगिता बनाये रखनी चाहिए।"[1] इस प्रकार पति-पत्नी दोनों होशियारी से काम लेने के कारण परिवार की व्यवस्था बनी रहती है । इसी प्रकार अपने बुढापे को व्यवस्थित ढंग से संभालते बाबूजी का चित्र हमें मिलता है चन्द्रमोहन दिनेश की कहानी 'सीनियर सिटीज़न' में । बाबूजी ने अपने दिनचर्यों को कुछ इस प्रकार बना लिया था कि उन्हें कभी खाली बैठने या अपने बुढापे को लेकर चिन्तित होने का ही वक्त नहीं मिलता था। "वे प्रतिदिन सुबह चार बजे बिस्तर छोड देते थे । शौचादि से निवृत्त होकर वे झाड-बुहार करते, फिर खुली छत पर ठहलाते और हल्का व्यायाम करते । खान-पान में वे अतिरिक्त सावधानियाँ बरतते।....

1. (सं) डॉ. शीतांशु भरद्वाज, सही दिशा की ओर, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 171

व्यायाम आदि से निवृत्त होकर वे स्नान कर पूजा पर बैठ जाते । आधा-पौन घंटा- घरेलू समस्याओं पर चर्चाएँ करते ।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि यदि वृद्धजन कुछ समझदारी से काम ले तो अपने बुढ़ापे को अभिशाप न बनाकर, अपने हिसाब से और बच्चों के इच्छानुसार बिता सकते है । इस प्रकार न उन्हें हर काम केलिए बच्चों पर निर्भर होना पडेगा और न ही बच्चों को उनपर किसी बात को लेकर ऊँगली उठाने का अवसर मिलेगा ।

अपने इकलौता बेटा द्वारा वृद्धसदन में उपेक्षित रहकर भी निराश एवं संत्रास न होकर, उस परिस्थिति में अपने को संभालते और अपने जीवन से हार न मानते एक बूढ़े की कहानी है चित्रा मुद्गल की 'गेंद' कहानी । सचदेवा जी नवोदय विद्यालय के अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य हैं । उनके विलायती बेटे ने उन्हें वृद्धाश्रम में भरती करा दी है । लेकिन इस बात को लेकर वे कभी चिन्तित नहीं हैं । उनके हिसाब से जो उन्हें नहीं चाहते, उन लोगों को वे भी नहीं चाहते । अपना पेंशन वे वृद्धाश्रम के नाम लिख देते हैं । अपने तरह की उपेक्षित अनेक वृद्धजनों के बीच रहकर भी वे कभी कमज़ोर नहीं पडते । सैर पर जाते वक्त मिले बिल्लु को वे अपना पोता मान लेते हैं । वे उससे कहते हैं - "तुम मुझे अंकल क्यों कह रहे हो... मैं तुम्हारे दादाजी की उम्र का हूँ । मुझे दादाजी कहो।"[2] यहाँ तक उस अनजान बच्चे केलिए क्रिकेट किट खरीदने को वे तैयार हो जाते हैं । अपने साथी की मुत्यु

1. सीनियर सिटीज़न, वर्तमान साहित्य, जनवरी 2014, पृ. 63
2. चित्रा मुद्गल, गेंद, वागर्ष दिसंबर 1999, पृ. 52

हो जाने पर शव-यात्रा में जाने के बजाए वे क्रिकेट किट खरीदने केलिए मार्केट जाना चाहते हैं । अर्थात किसी भी तरह वे अपने को मायूसी से भरना नहीं चाहते हैं । अपनी ज़िन्दगी के प्रति एक प्रकार का सकारात्मक दष्टिकोण उन्होंने बना लिया है । इसी कारण ऐसा कुछ भी वे करना नहीं चाहते हैं जिससे उनके मन को ठेस पहुँचें।

गिरीश अस्थाना की कहानी 'बुढ़ऊ का आधुनिकीकरण' अपने को आधुनिक बनाए एक बूढ़े बाप की कथा सुनाती है । अब्बूजी अपने को 'पुराने ज़माने का आदमी' कहलाना नहीं चाहता है । वे अपने पुत्र कमर से नए तौर-तरीके सब जानना चाहते हैं । यह ही नहीं 'न्यू इयर' की रात में वे कमर के साथ ग्रैंड होटल में डिनर पर भी जाते है । दूसरों को शराब लेते देखकर वे कमर से पूछते है - "तुम भी क्यों नहीं ले लेते छोड़ी-सी शराब? इसके साथ खाना अच्छी तरह खाया जा सकेगा । झटपट आर्डर दे दो, मेरा मुँह क्या ताक रहे हो?"[1] अब्बूजी अपने बेटे पर किसी भी तरह का दबाव नहीं डालना चाहते हैं । क्योंकि उन्हें यकीन है कि यदि वे अनुमति नहीं देते तो बेटा चोरी चुपके उनके सामने ही शराब पियेगा । अपने बेटे को उलझन में डालना उन्हें पसन्द नहीं हैं । अब्बू की समझदारी पर कमर भी खुश हो जाता है । दोनों खूब मस्ती करते हुए घर लौटते हैं - "बाप-बेटा रात के एक बजे के करीब जब होटल से चले तो बाकर साहब को ऐसा महसूस हो रहा

1. गिरीश अस्थाना, बुढ़ऊ की आधुनिकीकरण, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 77

था जैसे वे फिर से जवान हो गए हैं ।"[1] कहानी के अब्बूजी इस बात से वाकिफ है कि यदि वे अपने को वृद्ध मानते हुए घर के अन्दर ही पड़े रहे तो यह उनका नाश ही करेगा । वे हर वह काम करना पसन्द करते हैं जो उनके मन को खुशी देता है क्योंकि वे जानते हैं कि वृद्धावस्था में मन की संतुष्टि ही सबसे ज़्यादा आवश्यक है ।

उपर्युक्त कहानियों में हमने अपनी परिस्थिति के अनुरूप अपने को बनाए हुए वृद्धजनों को देखा तो समकालीन कहानियों ने ऐसे वृद्ध पात्रों को भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है जो अपने अंतिम वेला में भी अपने फैसलों और अपने लक्ष्यों में ही अटल रहे हैं । बच्चों के होते हुए अथवा उनके साथ रहते हुए भी वे कभी उनके अधीन में आना नहीं चाहते है । ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' के पिता अपने वार्धक्य में भी अपना मन चाहा ज़िन्दगी बिताते हैं । वे किसी की बात को कान नहीं देते है । अपना हर कार्य वे अपने तात्पर्य और अपने हिसाब से करते हैं । यहाँ तक कि बच्चों द्वारा घर पर सभी सुविधाएँ बनाए रखने के बावजूद जिन तौर-तरीकों की वे आदी है वहीं करते। अपने बच्चों पर किसी भी प्रकार निर्भर होना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है । पिता के व्यवहार से असंतुष्ट होकर बेटा कहता है - "गजब तो पिता की जिद है, वह दूसरे का आग्रह-अनुरोध माने तब न।... अपनी अमावट गजक और दाल-रोटी के अलावा दूसरों द्वारा लाई चीज़ों की श्रेष्ठता से वह

1. गिरीश अस्थाना, बुढ़ऊ की आधुनिकीकरण, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 78

कभी प्रभावित नहीं होते । वह अपना हाथ-पाँव जानते हैं, अपना अर्जन और उसी में उन्हें संतोष है ।"[1] उनको यकीन है कि किसी भी प्रकार अपने बच्चों पर निर्भर होना, उनके गुलाम बनने के बराबर हैं । क्योंकि नई पीढ़ी केलिए अपने माँ-बाप को देखना और उनका ख्याल रखना कर्तव्य न होकर एक बोझ ही है । वे समझते हैं कि वे अपने माँ-बाप पर मेहरबानी कर रहे हैं । इसी कारण उनके हर बर्ताब में अधिकार का स्वर रहता है । बच्चों के इस मनोभाव को अच्छी तरह पहचानने के कारण ही आधुनिक समय के माँ-बाप अपने बुढ़ापे को ठीक बिताने का प्रबन्ध भी खुद कर लेते हैं जिससे वे किसी पर बोझ न बने ।

अपने बच्चों की मनमानी के खिलाफ जाने के कारण घर पर अकेले पड गए बाप की कहानी है गिरिराज शरण अग्रवाल की कहानी 'बूढ़ा ज्वालामुखी।' रायबहादूर की बेटी अपने से नीच जाति के युवक से प्रेम-विवाह कर लेती है । इसी कारण अपने कायदे-कानून से अटल रायबहादूर उसे घर से निकाल देता है । अब उनके साथ उनका बेटा ही होता है । लेकिन उसे भी अपनी इच्छाओं के विरुद्ध जाते देख वे कहते हैं - "क्या यह जगतनारायण भी यही चाहता है कि मैं उससे सदा-सदा के लिए संबन्ध तोड़ लूँ ।"[2] रायबहादूर को इस बात का दुःख कतई नहीं है कि अपने वार्धक्य में

---

1. ज्ञानरंजन, पिता, सपना नहीं, पृ. 161, 162
2. गिरिराज शरण अग्रवाल, बूढा ज्वालामुखी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 30

वे बिल्कुल अकेले हैं । उनके हिसाब से उनके नालायक बच्चों से बेहतर उनका पालतू कुत्ता कैटी है, जो अपनी मालिक का बफादार हैं । बच्चों को अपने से दूर करके उन्हें कभी यह चिन्ता नहीं सताती है कि उस महल जैसे घर में वे अकेले कैसे रहेंगे । वह कुत्ता पालता है और अपनी सहायता केलिए नौकर रखता हैं । उन्हें प्रतीक्षा हैं कि उनके बच्चे लौट आएँगे, लेकिन उन्होंने यह भी तय कर लिया था कि वे कभी अपने बच्चों के पास अथवा शरण में नहीं जाएँगे ।

अपने हठ के कारण घरवालों और किराएदारों के नफरत के पात्र है दयानन्द अनन्त की सीमेण्ट में उगी घास' कहानी के पाण्डेजी। लोगों के नज़रिए में वे बहुत ही कंजूस और हठ-बुद्धि के व्यक्ति हैं । नौकरी से रिटायर्ड होने के बाद भी वे ट्यूशन लेते हैं, घर पर सब्जियाँ लगाए हुए है जिसे वे बाज़ार में बेचते हैं और घर का एक हिस्सा किराए पर दिए हुए है । उनके परिवारवालों को उनसे शिकायत है कि वे बहुत ही क्रूर मनोभाव के हैं और इसी कारण वे उनसे घृणा करते हैं । लेकिन पाण्डेजी को इन सबकी कोई पर्वाह नहीं है । वे एक-एक चीज़ का हिसाब रखते हैं । उनके इस व्यवहार के कारण उनकी पत्नी और बेटी उन्हें छोडकर चली जाती है। फिर भी उन्हें कोई फर्क नहीं पडता हैं । उन्हें पूरा विश्वास हैं कि जो वे कर रहें हैं बिल्कुल सही है । इन सब घटनाओं के बावजूद भी पाण्डेजी को कठोर होते देख जब लेखक उनसे पूछताछ करता है, तो वे कहते हैं - "यहीं मैं इन

लोगों से कहता हूँ, लेकिन ये पैसे की कदर नहीं जानते । मैंने गरीबी देखी है, मैं पैसे की कदर जानता हूँ । ये लोग मेरे मरने के बाद मेरी ज़िन्दगीभर की मेहनत मेरी 'प्रापर्टी' को बरबाद कर देंगे, लेकिन मैं अपने जीते-जी ऐसा कैसे होने दे सकता हूँ?"[1] इस प्रकार अपने घरवालों द्वारा उपेक्षित होने पर भी पाण्डेजी अपने तरीकों से नहीं बदलते क्योंकि उन्हें मालूम है कि यदि उनके ज़मीन और जायदाद बच्चों को दे दिया जाए तो वे उसे बर्बाद कर देंगे और खुद उन्हें भी ठुकरा देंगे । लेकिन जब तक सारी संपत्ति उनके पास ही रहेंगी, बच्चे उनका कुछ तो मान रखेंगे ही ।

ज़िन्दगी में बिल्कुल अकेले होते हुए भी, अपने-आप को खुश और संतुष्ट रखती एक अम्मा की कहानी है बाबूसिंह चौहान की 'ग्राम माता'। अम्मा का कोई नहीं है फिर भी गांव के लोग उन्हें 'भग्गो दादी' बुलाते हैं क्योंकि अम्मा ने पूरे गांव को अपनी संतान बना ली थी । ऐसा एक भी घर नहीं था जहाँ अम्मा नहीं पहुँचती थी । उसके व्यवहार के कारण सभी गांववासी उन्हें बहुत चाहते भी थे । इसी कारण उन्हें भी कभी अकेलेपन का शिकार नहीं होना पडा - "फकत दम वह अकेली, पर कभी जीवन का एकाकीपन उसे खाने को दौड़ा, ऐसी बात नहीं।"[2] दादी जानती है कि अपने के वृद्धा और अनाथ मानकर यदि वह घर पर ही पडे रहे तो इससे उसका

---

1. (सं) गिरिराज शरण, सीमेण्डट में उगी घास, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 60
2. (सं) गिरिराज शरण, ग्राम माता, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 81, 82

कुछ अच्छा नहीं होनेवाला । शरीर का स्वस्थ रहने केलिए मन का स्वस्थ होना ज़रूरी है, इसी कारण अपनी किसी भी परिस्थिति का असर अपने मन पर होने वह नहीं देती थी । गांव के रोड को पक्का न बनाने के कारण भरी पंचायत में वह सभापति का अपमान करती है और अपने बुढ़ापे का ध्यान न रखते हुए खुद सडक बनाने निकल जाती है । उसी प्रकार पाँच सौ रुपए केलिए अपनी बेटी को बेचता कलुआ पर वह इस प्रकार क्रुध होती है जैसे रधिया उसकी खुद की पोती है । वह कहती है - 'रधिया के बापू, तुझे पैसे चाहिए ना? तो ले बेच डाल मेरी गाय को, मेरी गाय है इस सारे गाँव की माँ, बेच दे इसे, लेकिन रधिया नहीं बिकेगी, वह तेरी ही नहीं, सारे गाँव की बेटी है । कोई शर्मदार अपनी बेटी नहीं बेचा करता, गद्दार अपनी माँ बेच डालते है ।"[1] दादी का जीवन दूसरों केलिए समर्पित था और इसी में उसे अपनी खुशी मिलती थी । इसी कारण अपने ज़िन्दगी से उसे कभी निराश होना भी नहीं पडा ।

घर छोडना

अब तक के अध्यायों में हमने देखा कि किस प्रकार पुराने मूल्यों की जगह नए मूल्यों ने ले लिया है और किस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति की घुसपैठ ने भारतीय संस्कृति को नष्ट कर दिया है । जिसके परिणास्वरूप नई

---

1. (सं) गिरिराज शरण, ग्राम माता, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 85

पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी के प्रति उपेक्षा की भावना पनपने लगी । आधुनिक समाज के उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने घर के बुजुर्गों को कूडे के समान बना दिया । लेकिन वर्तमान पुरानी पीढ़ी भी अपने पर होते अन्यायों से अब वाकिफ है और वे भी सतर्क बन गए है । बच्चों द्वारा अपने पर होते शोषणों को सहने केलिए वे भी अब तैयार नहीं है । अंग्रेज़ी कहावत 'टिट फोर टाट' के मनोभाव को इन बुजुर्गों ने अपना लिया है । इस प्रकार इन बूढ़ों द्वारा भी नई पीढ़ी के खिलाफ अपना प्रतिरोधात्मक स्वर प्रकट होने लगा ।

भारतीय परंपरा के अनुसार घर के बेटे वारिस होते हैं और बेटियों को शादी-शुदा करके ससुराल भेजा जाता है । इस हिसाब से घर के वृद्ध माँ-बाप को संभालने की ज़िम्मेदारी भी बेटों की होती है । घर के अन्दर चाहे जिस प्रकार का व्यवहार भी उनके साथ किया जाए लेकिन घर के बाहर उन्हें सम्मान देने का मुखौटा ओड़ना ही पड़ता है क्योंकि यह हमारी संस्कृति का भाग है । परिवार की सत्ता बेटे-बहुओं के हाथ आते ही बुजुर्ग के प्रति उनका मनोभाव भी बदल जाता है । लेकिन बाहरी तौर पर सब कुछ ठीक दिखता है । 'बेटियाँ पराई हैं और बेटे ही अपने हैं, इस सोच के कारण बूढ़े लोग भी इस परिस्थिति से अपने-आप को मिला लेते थे । बेटों द्वारा उनपर कैसा भी बर्ताव हो, वे उसे घर के चार-दीवारी के अन्दर ही दबाते थे क्योंकि किसी भी हालत में बेटों को अपमानित करने अथवा नीचा दिखाना नहीं चाहते थे। लेकिन आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है । बूढे माँ-बाप आज केवल बेटों

को ही अपना सहारा अथवा आश्रय नहीं मानते हैं । जैसे ही उन्हें लगने लगता है कि बेटों के घर में वे फालतू हैं, वे अपनी बेटियों के पास चले जाते हैं। उन्हें कभी यह चिन्ता नहीं रहती कि बेटे क्या सोचेंगे और समाज क्या कहेगा। उन्हें मालूम रहता है कि इससे समाज में बेटों का सम्मान घटेगा और खुद बेटों को भी बुरा लगेगा । लेकिन इसकेलिए वे अपनी ज़िन्दगी को कुरबान करना नहीं चाहते । समकालीन कहानियों में ऐसे कई माँ-बाप हैं जो बेटों के तिरस्कार और उपेक्षा पर अपनी बेटियों के पास चले जाते हैं ।

दिनेशचन्द्र जी की कहानी 'उसका जाना' में अपने बेटों के घर छोडते एक माँ और माँ के जाने पर घर पर उत्पन्न हुए नए माहौल का चित्रण हुआ है । माँ के रहते हुए उसके बेटे और बहुएँ कभी उनका ध्यान नहीं रखते थे। तो वह बेटों के घर छोडकर अपनी बेटी के साथ चली जाती हैं । माँ के जाने पर पहले तो वे चैन का साँस लेते हैं । उन्हें लगता है कि बोझ सिर से निकल गया । बेटा कहता है - "धत... छोडों इन बातों को । लेट अस सेलीब्रेट हर डिपार्चर। एक-एक कप चाय हो जाए-नीबू वाली ।"[1] लेकिन धीरे-धीरे उन्हें महसूस होने लगता है कि माँ के जाने के बाद घर सूना-सूना हो गया है । प्रत्येक क्षण वे माँ को याद करते हैं और माँ के जाने पर दुःखी होते हैं । पहले-पहले उन्हें लगता है कि माँ के जाने के बाद भी घर पर उनका भूत सवार है कि हर कार्य करते वक्त उन्हें माँ की बातें, उनकी टोकना, गुस्सा

1. दिनेशचंद्र झा, उसका जाना, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 104

होना आदि याद आती है । लेकिन धीरे-धीरे पता चलता है कि माँ के बिना घर, घर नहीं सिर्फ एक मकान रह गया है और वे अन्दर ही अन्दर दुःखी हो जाते हैं और अपने द्वारा की गई करतूतों पर पश्चाते हैं । लेकिन अम्मा भी इस बार अपने फैसले की पक्की थी कि अब कभी लौटकर वापस उस घर नहीं जाएगी ।

उसी प्रकार अपने बेटों के घर छोड़कर बेटी के साथ जाते पिता की कहानी है वैतरणी के पार' । बहुओं को उनके लिए एक समय का खाना पकाना भी कठिन हो गया था तो वे खुद अपना खाना पका लेते थे । बेटी जब उनका हाल जानने केलिए घर आती है तो वे उसके साथ जाने केलिए तैयार हो जाते हैं । वे कभी यह नहीं सोचते कि उनके बेटे और बहुएँ क्या सोचेंगे । वे अपनी बेटी से कहते है - "तू आ गई तो मेराआत्म सम्मान बच गया वरना मैं अपने दिए संस्कारों में ही ढूँढ़ता रहता था कि कहा कमी रह गई । पर बेटी तूने मुझे आत्मग्लानि से बचा लिया वरना मैं सूरज के उजाले में भी उस घर में फैलते अंधेरे से डरने लगा था ।"[1] पिताजी के कथन से व्यक्त है कि वे परंपराओं और संस्कारों को खूब माननेवाले है। फिर भी वे बेटी के साथ चले जाने को तैयार हो जाते हैं । कहानी के अंत में रचनाकार बाबूजी को सलाह देते हैं, जो वर्तमान समाज के सभी बुजुर्गों केलिए उनका सुझाव है । वे कहते हैं - "बेटों की नाव पर बैठकर बुढ़ापे की वैतरणी पार

1. स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, पृ. 110

करने वाले समाज में बाबूजी उपेक्षा और तिरस्कार के साथ-साथ अब भूख से भी गले-गले तक डूबने लगे थे । ऐसे में तिनके की तरह कोई बेटी आकर आपका हाथ थामे तो उसकी ऊँगली पकड़ लीजिए बाबूजी, उस हाथ ने कभी आपकी उँगली पकड़कर चलना सीखा था । सही मायनों में उस स्पर्श से ही आपके स्नेह संस्कार प्रवाहित हुए थे, वही संस्कारों की वाहक है ।"[1] अर्थात लेखक का यह कथन पुत्र सत्ता पर अब भी विश्वास रखनेवाले बूढ़ों केलिए एक व्यंग्यात्मक चेतावनी है ।

सरला अग्रवाल की कहानी 'दरकते सपने' के बाबूजी सालों बाद, शहर में बसे अपने बेटे से मिलने को जाते है । अपनी पूरी संपत्ति लुटाकर उन्होंने रतन को पढ़ाया और काबिल बनाया था । अपनी बाकी की ज़िन्दगी बेटे के साथ गुज़ारने के आग्रह में वे शहर निकल पडते है । लेकिन वहाँ पहुँचने पर यह पता चला कि सब कुछ उनके सोच के विपरीत ही हो रहा है। बहु उन्हें अपरिचित कहकर अन्दर घुसने नहीं देती तो रात तक उनको बाहर ही बेटे की इंतज़ार करना पडता है । बेटे के आने पर अपने पिता के प्रति उसका बर्ताव भी कुछ अजीब सा ही होता है । बापूजी को अन्दर ही अन्दर तो दुःख होता है लेकिन वे किसी भी प्रकार अपने को एक व्यर्थ वस्तु अथवा बोझ मानने को तैयार नहीं थे । वे उस आदी रात को ही बेटे का घर छोड देते हैं और गांव लौटते हैं - "बेटे के आन्दर जाते ही उन्होंने वह पोटली वहाँ छोड़ी और अपना टूटा दिल और टूटे सपने लिये चुपचाप बाहर

1. स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, पृ. 110

निकलकर, ऑटो लेकर सिंधी कैंप की ओर चल दिये ताकि उसी रात की बस से वापस अपने घर पहुँच सकें।"[1] अपने-आप को बेटे के घर एक फालतू चीज़ अथवा गुलाम बनाकर जीने से बेहतर उनकेलिए गांव अकेले, अपने इच्छानुसार जीना ही था ।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'अपना-अपना आकाश' की अम्मा भी अपने बेटों की असलीयत जानकर अपना घर छोड़ देती है । वह अपने समय उस कुनबे की मालकिन रही थी और सबकी मार्ग निर्देशिका रही थी । लेकिन जैसे-जैसे उसने बच्चे बडे होते गए और वह बूढ़ी होती गई, स्थिति बदलती गई । वह अपने बेटों केलिए बोझ और बहुओं केलिए 'आउट डेटिड' बन जाती हैं । उनके नाम की ज़मीन बेटे अपने नाम करवा लेती है । ज़मीन-जायदाद अपने नाम करवाने के बाद माँ को वृद्धाश्रम रखने का निर्णय लिया जाता है । अम्मा को जब इस बात का पता चलता है तो वे खुद नौकर के सहारे घर से निकलकर गाँव चली जाती है । अम्मा को घर पर न पाकर उनके बेटे दौड-थूप करने लगे, उन्हें डर हो जाता है कि यदि अम्मा को कुछ हो गया तो उनके सिर पर मुसीबत आ जाएगा । लेखिका लिखती हैं - "दोनों बेटे कार लेकर थाने की ओर भागे । लल्लू मूँह बाये सब देख रहा था और मन ही मन अनुमान लगा रहा था कि अब तक तो अम्मा जी गाँव पहुँच चुकी होगी ।"[2]

---

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, दरकते सपने, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 101
2. मैत्रेयी पुष्पा, अपना-अपना आकाश, चिन्हार, पृ. 19

वृद्धाश्रम में जगह ढूँढ़ना

अब तक हमने देखा कि बच्चों की उपेक्षा और तिरस्कार के प्रति निराश होने के बजाए बूढे लोग अपनी बेटियों अथवा दूर के रिश्तेदारों पर भी निर्भर हो जाते हैं, तो कुछ वृद्धजन इन सबसेअलग, अपने-आप वृद्धाश्रमों की शरण ले लेते हैं । हमने अक्सर यह देखा और सुना है कि बूढ़े माँ-बाप को बच्चे वृद्ध सदन धकेल देते हैं लेकिन आज के माँ-बाप खुद वृद्धसदनों का जीवन पसन्द करने लगे हैं । उनके मुताबिक अपने ही घर पर, अपने बच्चों के बीच दम घुटने से बेहतर है, किसी वृद्धाश्रम में अपने ही तरह के लोगों के साथ अपने हिसाब से जीना। दूसरी ओर बच्चों केलिए यह बहुत शरम की बात भी है कि उनके होते हुए माँ-बाप वृद्धसदनों का सहारा ले रहे हैं, तो यह एक प्रकार से अपने नालायक बच्चों के प्रति उनका प्रतिरोध ही बनता है ।

रामदरश मिश्र की कहानी 'भविष्य' में एक ऐसे पिता का चित्रण हैं जो अपना सब कुछ बेचकर, अपने इकलौते बेटे को भी छोड़कर वृद्धाश्रम चले जाते हैं । पत्नी की मृत्यु के उपरान्त शिव भाई बहुत दर्द झेलकर अपने पुत्र को पाल-पोसकर बडा करता है । लेकिन जैसे-जैसे वह बडा होता जाता है, नालायक बनता जाता है । उनका कमाया हुआ सारा पैसा, वह लुटाने लगता है । जब शिव भाई को यकीन हो जाता है कि उनका बेटा नहीं सुधरेगा

तो वे वृद्धाश्रम चले जाने का निर्णय ले लेते हैं । वे अपने दोस्त से कहते हैं - "क्यों जिऊँ इस कपूत के साथ? क्यों जिऊँ इस कपूत के लिए ? बस अब मैं अपनी दुकानदारी समेट रहा हूँ । अगर इसकी अपनी ज़िन्दगी है तो मेरी भी अपनी ज़िन्दगी है । इसे एक पैसा नहीं दूँगा, जिये जैसे जीना हो ।"[1] शिव भाई अपनी दुकान बेचता है और सारा पैसा वृद्धाश्रम के नाम कर देता है । उनको कभी इस बात का दुःख नहीं होता कि बेटा अकेला रह गया है। उनको अपनी करतूतों पर पश्तावा भी नहीं है । वे कहते हैं - "मैं यहाँ वृद्धाश्रम में बहुत चैन से रह रहा हूँ । इसमें अपने पैसे से वृद्धों केलिए कई-कई सुविधाएँ निर्मित करायी हैं । हम एक-दूसरे के सुख-दुख को अपना मानते हुए बहुत प्यार से जीवन-यापन कर रहे हैं ।"[2]

अपने दो-दो बेटों के होते हुए भी वृद्धाश्रम में शरण लेते पिताजी की कहानी है सैली बलजीत की 'अपने घरौदे से दूर'। एक बेटा उन्हें ठुकराकर बाहर निकाल देता है तो भी दूसरा बेटा अपनी निर्धनता में भी उनका पूरा ख्याल रखने की कोशिश करता है । लेकिन उसकी पत्नी किसी भी हालत में अपने ससुर को घर रखने केलिए तैयार नहीं थी । पत्नी के ज़िद्द के आगे कमज़ोर और असमंजस में पडे बेटे को देखकर बापू तय कर लेता है कि वह अपनी शेष ज़िन्दगी वृद्धसदन में ही बिताएगा । उनको मालूम है कि

---

1. डॉ. शिवनारायण, भविष्य, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 23
2. वही - पृ. 24

यद्यपि उनका बेटा उन्हें स्वीकार कर ले लेकिन बहु स्वीकार नहीं करेंगी और इसका असर धीरे-धीरे बेटे पर भी पडेगा और वे धीरे-धीरे उनकेलिए बोझ बन जाएगा । वे बिना किसी को बताए घर छोड़ देते हैं और वृद्धाश्रम पहूँच जाते हैं । वृद्धाश्रम में फॉर्म भरते वक्त एक कॉलम पर उनका हाथ रुक जाता है । कुछ सोचने के बाद वे लिखते हैं - "कोई नहीं।"[1] बापू अपने-आप को अनाथ मान लेते हैं । उनके हिसाब से अपने को निर्दय और कर्तव्यहीन ऐसे दो बेटों के बाप कहलाने से बेहतर हैं अनाथ कहलाना ।

अपने बेटे, बहू और पोती के साथ रहते हुए भी एक प्रकार का अकेलापन और एकाकीपन को महसूस करते वृद्ध दम्पति की कहानी है, संतोष श्रीवास्तव की 'आकारों में कोहरा'। कहने को तो उस घर में सब कुछ था । लेकिन उन्हें कुछ भी करने या कहने का अधिकार नहीं था । हर कार्य केलिए बेटे या बहू की इजाजत की ज़रूरत थी । जब उन्हें व्यक्त हो गया कि अब उनकी ज़रूरत उस घर में नहीं है तो वे तय कर लेते हैं कि वे बेटे के घर छोडकर वृद्धाश्रम चले जाएँगे । अपने बेटे से जी कड़ा करके वे कहते है - "परसों कोई टूरिस्ट बस चारों धाम की यात्रा पर जा रही है । मैं भी तुम्हारी माँ लेकर जा रहा हूँ । सुना है बद्रीधाम में भक्तों का कोई आश्रम खुला है । तुम्हारी माँ की इच्छा है कि ज़िन्दगी के बाकी दिन वहीं गुज़ारे जायें।"[2]

---

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, अपने घरौंदे से दूर, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 25
2. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, आकाशों में कोहरा, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 34

बच्चे चाहे कितना भी कठोर और स्वार्थी बने, जब उनके माँ-बाप घर छोडते हैं तो उन्हें अन्दर ही अन्दर दर्द ज़रूर होता है । कभी-कभी दूसरों के प्रभाव अथवा हालातों के प्रभाव से ही वे अपने वृद्ध माँ-बाप से ऐसी हरकतें करते हैं । लेकिन माँ-बाप के घर छोड़ना या वृद्धाश्रम चले जाना उनके मन को हिलाकर रख देते हैं और वे पश्तावा करने लगते हैं । लेकिन अक्सर यही होता है कि अपने प्रति उनके जो व्यवहार हुए, उन्हें भूलने या क्षमा करने केलिए कम ही माँ-बाप आजकल तैयार होते हैं । क्योंकि बच्चों पर अब उनका भरोसा नहीं रहा । जिन लोगों ने उन्हें एक बार, अधिकार और दौलत केलिए उपेक्षित कर दिया, उनका आगे कैसे भरोसा रखा जा सकता है । 'दूसरा रास्ता' कहानी के बाबूजी को जब एहसास हो जाता है कि बच्चे उनके लिए समय नहीं निकाल पा रहे हैं तो अम्मा के 'बरसी' के बहाने वे खुद सभी को घर बुला लेते हैं । वे अपनी बेटी से कहते हैं - "क्या करुँ, तुम लोगों को देखने का बहुत मन था-पूरा एक वर्ष गुज़र गया तुम्हारी अम्मा को गए पर कोई नहीं आया यहाँ, इसलिए बुलवा लिया।"[1] लेकिन उनके इस बुलाने के पीछे एक मकसद था । अपनी सारी सम्पत्ति बच्चों को बाँटकर वे वृद्धाश्रम जाने की तैयारी कर लेते हैं । एक छोटी सी अटैची में अपने कपडे और माँ की तस्वीर लेकर निकलते वक्त वे कहते हैं - "अच्छा बच्चों मैं चलता हूँ । ... अब वृद्धाश्रम में रहूँगा।"[2] पिताजी के फैसले पर

---

1. स्वाति तिवारी, दूसरा रास्ता,अकेले होते लोग, पृ. 97
2. वही - पृ. 98

बच्चे चकित रह जाते हैं, लेकिन उनसे कुछ कहने की हिम्मत किसी को नहीं रहती क्योंकि उन्हें खूब मालूम था कि उन लोगों की वजह से ही यह निर्णय लिया गया है ।

उपर्युक्त कहानियों के अलावा रूपलाल बेदिये की 'पीले पत्ते' और डॉ. शीताशु भरद्वाज की 'सच की सजा' कहानियों में भी हमें ऐसे वृद्ध माँ-बाप मिलते है जो वृद्धाश्रम के जीवन को बेहत्तर मानते हैं ।

वसीयत बदल रही है

वर्तमान समय की यह सबसे बडी विडम्बना है कि चार-पाँच बच्चों के होते हुए भी वृद्धजनों को अपनी ज़िन्दगी नौकरों के सहारे बिताने पड रहे हैं। यह दूसरी बात है कि बडे-बडे महानगरों में नौकरों द्वारा वृद्धजनों की हत्या हो रही हैं और उनकी सम्पत्ति लूटी जा रही है, लेकिन अक्सर अपने कोख के बच्चों से ज़्यादा बफादार ये नौकर ही होते हैं । इसलिए कभी-कभी बच्चों से ज़्यादा प्यार और विश्वास भी उन्हीं पर होती है । 'विदाई' कहानी के बासाब और माँ साब बहुत अमीर होते हुए भी गरीबी की ज़िन्दगी बिताते हैं। अमीर पुत्र के होते हुए भी उनका एकमात्र सहारा उनकी नौकरानी दुलारी थी जो उन्हें अपने पुत्री से भी प्यारी है । दुलारी जी-जान से उनका ख्याल रखती थी तो उन्हें कभी किसी की कमी महसूस नहीं होती थी । अब उसकी शादी होनेवाली है तो दोनों बूढ़े इतने निराश हो जाते हैं कि खाना तक नहीं निकलता क्योंकि उनको यकीन था कि दुलारी के जाने के बाद वे बिल्कुल

अकेले पड़ जाएंगे और यह भी मालूम था कि अब उनके सारी संपत्ति अपने बेटे के नाम करके उसके साथ शेष ज़िन्दगी बिताना होगी । उन्हें मालुम था कि जिस बेटे ने अब तक मुडकर भी नहीं देखा, वह अब आएगा तो सिर्फ दौलत हड़पने केलिए ही आएगा । इसलिए वे अपना सब कुछ दुलारी को दे देते हैं - "कोठार घर की कोठी में से रखा हुआ नया बर्तनों का थेला जिसमें बाल्टी, घड़ा, थाली, गिलास, कटोरी, तपेली, तसले, डिब्बे सब मिलाकर 21 बर्तन थे... फिर खुद के ब्याह की नथ वे दुलारी की नाक में पहना देती है।"[1] इस प्रकार यह जानते हुए भी कि अब बेटा बिल्कुल उनकी उपेक्षा कर देगा, वे अपना सब कुछ नौकर को दे देते हैं क्योंकि वे अपनी संपत्ति को बेटे के हाथ लगने देने नहीं चाहते थे ।

उषा महाजन की कहानी 'अब्बूजी' के अब्बूजी अपनी मृत्यु उपरान्त भी बच्चों को सबक सिखा देते हैं । जीते-जी कोई भी बेटा उनका ख्याल नहीं रखता और उनको अपनी आखिरी समय नौकरों के साथ बिताना पड़ता है। लेकिन उनकी मृत्यु के उपरान्त की शेषक्रिया में कोई कमी नहीं रहती । सारे बेटे इकट्ठे होते हैं और बड़ी श्रद्धा से उनकी 'चौथ' मनाते है क्योंकि दिखावा में कोई कमी नहीं आने चाहिए थी । लोगों को भी लगता है कि अब्बूजी कितने भाग्यशाली रहे कि उन्हें ऐसे तीन बेटे मिले । लेकिन बेटों को किसी भी प्रकार कार्यक्रम खतम होने का इन्तज़ार था कि उसके बाद वसीयत

---

1. स्वाति तिवारी, विदाई, अकेले होते लोग, पृ. 80

ढूँढ़ी जाए । लेकिन अब्बूजी ने अपनी सारी संपत्ति वृद्धाश्रम के नाम कर दी थी - "क्या कोई सपने में भी सोच सकता था कि अपने जाए तीन-तीन बेटों के होते अब्बूजी अपने हाथों बनाई इस कोठी को आनंद वृद्धाश्रम' को सौंप जाएंगे।"[1]

उपर्युक्त कहानियों से व्यक्त हैं कि आज के माँ-बाप भी बच्चों की तरह कठोर बन सकते हैं । उनके हिसाब से जो बच्चें उनके प्रति अपने कर्तव्यों को नहीं निभाते, उन बच्चों के प्रति वे भी कर्तव्यहीन बन जाते हैं । पहले समय में बच्चे चाहे अपने से कैसा भी बर्ताव करे उनकी धन-दौलत उन बच्चों को ही मिलता था और ये बच्चे 'मुक्त का रस' पीते थे । लेकिन वर्तमान पुरानी पीढ़ी ने भी अपने माहौल के साथ अपना सोच को बदल दिया हैं । इन लोगों ने साबित कर दिया है कि केवल रिश्ते से ही कोई अपना नहीं बनता बल्कि रिश्ते निभाने के साथ-साथ प्यार और ख्याल की भी ज़रूरत होती है और जहाँ उसकी कमी होती हैं वहाँ रिश्ते भी टूट जाते हैं चाहे वह माँ-बाप और बच्चों के बीच का ही क्यों न हो?

रूढ़ना और विरोध दिखाना

समकालीन कहानियों के कुछ वृद्धजनों ने अपना प्रतिरोध कुछ अलग ढंग से भी व्यक्त किया हैं । वे अपने बच्चों के प्रति विद्रोही बन जाते हैं ।

---

1. उषा महाजन, अब्बूजी, सच तो यह है, पृ. 32

उनका विद्रोह इतना तीखा होता है कि वे अपने ही औलातों को पराया मान लेते हैं । निर्मला सिंह की कहानी 'प्यासी रेत' की अम्मा को अपने बेटों से बहुत कष्ट झेलना पड़ता है । पिताजी के वसीयत पहले से ही बेटों के हाथ लगने के कारण उन लोगों ने अम्मा को बिल्कुल उपेक्षित कर दिया था । लेकिन अम्मा भी दुःखी रहने के बजाय कुछ न कुछ कष्ट हमेशा अपने बेटों को देती रहती । कुछ न मिले तो वे अपना क्रोध कपड़ों पर ही उतार देती और सब फाड़ देती ताकि बच्चों को उसके लिए खर्चा करने पड़े । उनको अपने बच्चों से घृणा था । वे अपने पडोसी से कहते - 'बेटी, मैं मर जाऊँ- तो मेरी बहुओं से मेरे पाँव मत छुआना और मेरे बेटों से चिता में आग मत लगवाना। मेरे साथ मेरे सन्तानों ने बहुत अत्याचार किए हैं । मुझे तो लगता ही नहीं कि मेरी यह अपना औलाद हैं । इन्होंने मेरी सेवा तो क्या करनी-सदा मुझे ठुकराया और दुत्कारा ही है..।"[1] हर माँ-बाप यही चाहता है कि अपने अंतिम समय पर बच्चे साथ हो और अपना अंतिम कर्म सारा बच्चे करें । लेकिन कहानी की मौसी इसका विपरीत चाहती है अर्थात उसके मन में अपने बच्चों के प्रति कोई वात्सल्य नहीं हैं ।

कृष्णा सोबती की कहानी 'दादी अम्मा' की दादी भी अपना विद्रोह कुछ इस प्रकार ही दिखाती है । सालों से वे अपने घर पर उपेक्षित थी । कोई उनका ध्यान नहीं रखता था । उनकी हर बात को टोका जाता था । यहाँ तक

1. डॉ. शीतांशु भरद्वाज, प्यासी रेत, वृद्धमन की कहानियाँ, पृ. 118

उनके अपने बेटे ने भी उन्हें अनदेखा कर दिया था । लेकिन जैसे ही दादी मरणासन्न होती है तो उनसे बेहद प्यार जताया जाता है । सारे घरवाले चारों ओर लग जाते हैं और उनकी बहु उन्हें दूध देती है । लेकिन उसे लेने केलिए वे तैयार नहीं होती - "अम्मा ने सिरहाने पर पड़े-पड़े सिर हिलाया नहीं कुछ नहीं - और बहू के हाथ से अपना हाथ खींच लिया ।"[1] अम्मा को मालूम है कि जो कुछ भी किया जा रहा है, सिर्फ हमदर्दी दिखोने केलिए है, उनसे झूठा प्यार दिखाया जा रहा है । जिस बहू ने जीते-जी बहुत बुरा-भला कहा है, खाना-पीना ठुकराया है, मृत्युवेला में उसका व्यवहार अम्मा केलिए सिर्फ ढोंग है । इसी कारण ऐसे लोगों से एक बूँद पानी भी लिए बिना वे मृत्युवरण कर लेती है ।

आत्महत्या

'अकेले रह गए वे' कहानी की भारती आत्महत्या के ज़रिए अपनी बेटियों से प्रतिक्रिया करती है । निशा और दिव्या के पापा अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बिल्कुल अकेले पड जाते हैं । बेटियों की शादी हो चुकी होती है और कोई उन्हें अपने साथ रखने केलिए तैयार नहीं होता तो वे बुढ़ापे में अपने अकेलेपन को दूर करने और अपने सहारे केलिए भारती से शादी कर लेते हैं । पिताजी की दूसरी शादी से वे बिल्कुल सहमत नहीं होती और बीच-बीच में घर आकर भारती से बुरा व्यवहार करती हैं । इसका बदला वह

1. कृष्णा सोबती, दादी अम्मा, सोबती एक सोहबत, पृ. 158

चुकाती है अपनी आत्महत्या से । भारती को यकीन था कि बेटियाँ अपने पापा की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं होगी । लेकिन उसकी मृत्यु के बाद उन्हें अपने पापा की ज़िम्मेदारी न चाहकर भी उठाना ही पडेगा । उनकी सोच सही निकली । भारती की मृत्यु बेटियों के मन में हलचल मचा देती है क्योंकि उन्हें अपने पापा से तो प्यार था लेकिन उनकी ज़िन्दगी में दूसरी औरत को देखना उनके लिए मुश्किल था । बेटियों ने कभी इस बात का कदर नहीं रखा कि पिताजी को बुढ़ापे में सहारे की ज़रूरत हैं । भारती की मृत्यु उन्हें फिर से अकेलेपन में धकेल देती है जो बेटियों को दूःखी कर देती है। वे कहती हैं - "हाँ हमें चलना चाहिए, पापा एकदम अकेले हो गए हैं ।"[1] इस प्रकार अपनी मृत्यु के ज़रिए, ही सही भारती अपना प्रतिरोध दिखाती है।

उपयुक्त कहानियों के अलावा मृदुला गर्ग की 'उधार की हवा' स्वयं प्रकाश की 'कहाँ जाओगे बाबा, उषा प्रियमवदा की वापसी, आदि कहानियों में भी विपरीत वातावरण में अपने को योजनाबद्ध करते वृद्धों को हमें देखने को मिलता हैं ।

अकेलेपन में दूसरी शादी

बुढ़ापा अपने साथ एक प्रकार का सूनापन लेकर आता है । वृद्ध-व्यक्तियों को करने केलिए कुछ नहीं होता है तो उनके पास बहुत अधिक

1. स्वाति तिवारी, अकेले रह गए वे, अकेले होने लोग, पृ. 128

समय रहता है । लेकिन नई पीढ़ी इन लोगों के समान व्यर्थ नहीं बैठी हैं, उनके पास समय की कमी रहती हैं । इस वजह से वे अपने माँ-बाप के साथ समय भी कम ही निकाल पाते हैं । यह वर्तमान समय की कठोर सच्चाई है कि समय की तेज़ रफ्तार में व्यक्ति गुम हो गया है । ऐसी स्थिति में अपने बच्चों को दोषी ठहराने के बजाए या उनपर आरोपण लगाने के बजाए वृद्धजनों को अपने समय का सही इस्तेमाल करने केलिए कुछ न कुछ उपाय निकाल लेने की आवश्यकता है । वृद्धावस्था में मित्रता जोडना अकेलेपन को दूर करने का उत्तम उपाय है । समकालीन कहानियों में ऐसे कई पात्र हमें मिलते हैं जिन्होंने दोस्ती के सहारे अपने एकाकीपन को तोड़ दिया है । किसी भी व्यक्ति केलिए उसका उत्तम मित्र उसका जीवन साथी ही होता है । खासकर वार्धक्य में ज्योंकि दोनों व्यर्थ ठहरे हैं, वे एक दूसरे का अच्छा सहारा बन सकते हैं । एक दूसरे से बातें करने से और साथ-साथ वक्त गुज़ारने से, उन्हें कभी यह महसूस नहीं होगा कि वे ज़िन्दगी के आखरी पड़ाव में है और अकेले हैं । सूर्यबाला की 'निर्वासित', संतोष श्रीवास्तव की 'आकारों में कोहरा', नरेन्द्र कोहली की शटल, डॉ.प्रमिला वर्मा की 'आकांक्षाओं से परे' आदि कहानियों में एक दूसरे के अच्छे मित्र बनते पति-पत्नी को हमें देखने को मिलता है ।

जहाँ परिवार में पति पत्नी दोनों जीवित हैं उनकेलिए यह संभव है । लेकिन जो व्यक्ति वैधव्य से गुज़र रहा है, उसकेलिए ज़िन्दगी कठिन बन जाती है । पहले समय में हमारे समाज में पति या पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी करने को बहुत ही बुरी नज़र से देखा जाता था । बल्कि आज भी लोग इस बात को अपनाने केलिए कम ही तैयार होते हैं । दुनिया की नज़र में दूसरी शादी करने का एक ही अर्थ है और उसका मज़ाक उठाय जाता है । लेकिन वार्धक्य में किसी का साथ कितना अनिवार्य है यह स्वयं वृद्धावस्था तक पहुँचने पर ही हम समझ सकते हैं । समकालीन कहानियों में ऐसे भी वृद्ध पात्र है जो समाज और समूह के, यहाँ तक अपने बच्चों के इनकार को भी नज़र अंदाज़ करके बुढ़ापे में अपने साथी चुन लेते हैं । उषा महाजन की कहानी 'निर्णय' की माँ अपने पति अनिरुद्ध की मृत्यु के बाद बिल्कुल अकेली पड जाती है । बच्चे शादी करके अपना अलग घर बसा लेते हैं तो उसकेलिए अकेले जीना मुश्किल हो जाता है । पति की यादें उसे हर वक्त तडपाती रहती हैं । वे कहती हैं -"वे थे तो, न जाने कितनी शिकायते थी उनसे । नहीं रहे थे, तो पता चला था कि जीवन साथी के बिना जीना क्या होता है । जो थे, जैसे थे-एक साथ तो था । मन का अकेलापन था तो क्या, शरीरों का संग तो था । आवाज़ों का आश्वासन तो था । उनके बिना काटने को दौड़ती घर की चहारदीवारी।"[1] तभी उनकी मित्रता नरेन से

1. उषा महाजन, निर्णय, सच तो यह है, पृ. 84

होती है जो पास के फ्लैट में रहता है । वह भी अपने ज़िन्दगी में अकेला था तो दोनों एक दूसरे से शादी करने का निर्णय ले लेते हैं । इस प्रकार अपने बच्चों की इच्छा के विपरीत, वे अपने बुढ़ापे को सुरक्षित और अर्थपूर्ण बना लेती हैं ।

उसी प्रकार 'अकेले रह गए वे' कहानी के पिताजी भी दूसरी शादी के ज़रिए अपने अकेलेपन को दूर करते हैं । उनकी बेटियाँ उन्हें अपनी माँ मानने के लिए तैयार नहीं होती है । फिर भी पिताजी अपने निर्णय से खुश रहते हैं । वार्धक्य में साथी के होने की आवश्यकता को दिखाते हुए वे कहते है - "जीनव का एक उजाड़-सा वीरानापन इस नए निर्णय के पीछे था, शायद कुछ खालीपन कम होगी।"[1] इस कहानी में भी पिताजी के निर्णय की वजह से बच्चे नाराज हो जाते हैं लेकिन उन्हें कभी नहीं लगता कि उनका फैसला गलत था क्योंकि वार्धक्य में किसी का सहारा और सहायता होना हर व्यक्ति केलिए ज़रूरी है जिसे बच्चे नहीं समझ पा रहे थे ।

मित्रता

बुढ़ापे की मायूसी को दूर करने का सबसे उत्तम तरीका है अपने ही उम्र वालों से मित्रता करना और उनके साथ वक्त गुज़ारना । इस तरह एक दूसरे के साथ समय बिताने से, कुछ अपना कहने से और कुछ उनका सुनने से मन का बहलाव भी होगा और साथ-साथ समय भी निकल जाएगा । किसी

1. स्वाति तिवारी, अकेले रह गए वे, अकेले होते लोग, पृ. 124

वजह से मन पीड़ित है तो उस दर्द को निकालने का भी अच्छा उपाय है दोस्ती । 'विवेकी राय' की कहानी 'चौथा पाया' का हरिद्वार बाबू जाने-माने साहित्यकार है । समाज में उनका बहुत बडा नाम हैं । फिर भी अपने परिवार में वे अकेले और उपेक्षित है । अपनी ज़िन्दगी से ही उन्हें ऊब है, जिसके कारण उनके मन में बहुत निराशा है । उनकी निराशा में उनका सहारा बनते हैं उनके मित्र । जब-जब उन्हें लगता है कि वे ज़िन्दगी में हारे हुए हैं, उनके मित्र उनका हौसला बढ़ाते हैं । जिसके कारण वे एक प्रकार के सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाने की कोशिश करते हैं । उनके दोस्त उनसे कहते हैं - "आप एक ही नकारात्मक लाइन पर क्यों बराबर सोच रहे हैं? आप क्यों नहीं भीतर स्वीकार-भाव को उगने देते हैं ? क्यों नहीं, जो कुछ दुःखद बीती है, उसे बिसार देते हैं ? आप यह तो सोचें कि आप कौन हैं ?"[1] दोस्तों की बातें उनके मन में आत्मविश्वास बढ़ाते और तब उन्हें अपनी रोगावस्था से भी मुक्ति महसूस होती है ।

'कलानाथ मिश्र' की कहानी 'पार्क' में ऐसे कई बुजुर्गों का चित्रण हुआ है जो मित्रता के ज़रिए अपनी शारीरिक और मानसिक कमज़ोरियों को दूर रखते हैं । ये बूढ़े पार्क में टहलने जाते हैं और एक दूसरे के साथ वक्त गुज़ारते हैं । इस प्रकार अपने आप को व्यस्त रखकर वे अपने बुढ़ापे को सार्थक बना लेते हैं । "एक ओर अवकाश ग्रहण कर चुके पदाधिकारीगण

---

1. विवेकी राय, चौथा पाया, सर्कस, पृ. 53

अपने अफसरानी चाल में इन सबसे भिन्न चहलकदमी कर रहे थे । साथ-साथ नौकरी के दिनों में भोगे हुए शानोशौकत की चर्चा तथा उन दिनों के खट्ठे-मीठे अनुभवों का लुत्फ उठाने में लगे थे।"[1]

चित्रा मुद्गल की 'गेंद' कहानी के सचदेवा जी बुढ़ापे में मित्रता करते है एक छोटे बच्चे से जिसे वे टहलते वक्त मिला करते हैं । बिल्लु के साथ दोस्ती करके वे अपना सारा गम भूल जाते हैं । उसे वे अपना पोता मान लेते हैं और उससे कहते है कि वह उन्हें 'दादाजी' बुलाए। वे कहते हैं - "तुम मुझे अंकल क्यों कह रहे हो... मैं तुम्हारे दादाजी की उम्र का हूँ । मुझे दादाजी कहो ।"[2] बिल्लु से मिलते ही वे अपने बेटे के प्रति नाराजगी, वृद्धाश्रम की अकेलेपन भरी ज़िन्दगी सब भूल जाते हैं । उन्हें लगता है कि वे दुनिया के सबसे भाग्यशाली बूढ़े हैं। उन्हें रोज़ शाम होने की प्रतीक्षा रहती है कि वे बिल्लु से जाकर मिल सके । इस प्रकार हर एक दिन आगे जीने की उमंग उनमें आ भरती है ।

आर्थिक दृढ़ता

कुछ समय पहले तक वृद्ध जन अथवा अवकाश प्राप्त बुजुर्ग पूर्ण रूप से अपने बेटों अथवा बेटियों पर निर्भर हो जाते थे । बच्चे भी इनकी देखभाल अपना कर्तव्य मानकर उनका खास ध्यान रखते थे । उस समय बूढ़ों की पेंशन और बच्चों की आय मिलकर घर की आर्थिक स्थिति भी

1. पार्क, नई धारा, अप्रैल-मई, 2010, पृ. 110
2. गेंद, वागर्थ, दिसंबर 1999, पृ. 52

प्रबल रहती थी । लेकिन समय के बढ़ने के साथ-साथ स्थिति भी बदल गई। वर्तमान समय की उपभोक्तावादी और उपयोगितावादी दृष्टिकोण ने युवा पीढ़ी को आर्थिक रूप से भी कमज़ोर बना दिया है । भूमण्डलीकरण के माहौल में जीते इस युवा पीढ़ी केलिए अपनी आय स्वयं उन केलिए ही कम पड रहा है तो वे अपने बूढ़े माँ-बाप के लिए क्या खर्च कर पाएँगें? 'महंगाई के इस समय में उनका मन भी संकुचित बन जाता है । उन्हें लगता है कि इन लोगों केलिए पैसे फालतू खर्च करने से बहत्तर है अपने लिए और अपने बच्चों केलिए कुछ बचाकर रखना । अपने माँ-बाप की कोई भी आवश्यकता उन्हें ज़रूरी नहीं लगती । इस प्रकार उनके द्वारा तय की गई चीज़ें ही उनकी आवश्यकताऐं बन जाती हैं । ऐसी स्थिति में बुजुर्गों केलिए अपना कुछ कमाई रखना आवश्यक हैं जिससे अपनी हर ज़रूरतों केलिए उन्हें बच्चों से माँगना न पड़े । समकालीन कहानियों में ऐसे कई वृद्ध पात्र हैं जिन्होंने अपने-आप को आर्थिक रूप से सुरक्षित बना रखा हैं ।

मृदुला गर्ग की कहानी 'अलग-अलग कमरें' की डॉ. नरेन्द्र अपने रिटायरमेंट के बाद अपने बेटे के साथ रहते हैं । उनकी डिस्पेन्सरी अब बेटा चलाता है । अपने समय में वे बहुत ही आदर्शवादी एवं विख्यात डॉक्टर रहे हैं । गरीबों को वे बिना फीस के इलाज करते और मुक्त में दवाइयाँ देते । लेकिन उनका बेटा उनसे ठीक विपरीत था । वह डिस्पेनसरी चलाता था

सिर्फ पैसे केलिए । बेटे की लापरवाही के कारण जब उनके दोस्त की मृत्यु हो जाती है तो नरेन्द्र बाबू अपने आप को संभाल नहीं पाते । फालिज के शिकार होते हुए भी वे ड्राइवर से कहकर वील चेयर निकलवाते हैं और अपने दोस्त के घर जा पहुँचते हैं । वे पाठक की पत्नी को अपने अकाऊण्ट से पैसा देते हैं - "चेकबुक में पाठक की पत्नी के नाम दो हज़ार का चेक पहले ही लिख लिया।.... बीमारी में जब तब रुपये की ज़रूरत पड़ती रहती थी।"[1] नरेन्द्र जी अपने बेटे के स्वभाव से वाकिफ हैं, इसीलिए वे भी उसपर निर्भर होना नहीं चाहते । अपनी ज़रूरतों केलिए वे खुद पैसा निकालते हैं । इसी कारण बेटा भी पिता पर हुकूम नहीं चला सकता था । पुत्र के व्यवहार पर क्रुद्ध पिता खुद डिस्पेनसरी में बैठ जाते हैं और पुत्र से कहते हैं - "और देखों सुरेन्द्र, तुम अपने लिए कोई दूसरा दवाखाना ढूँढ़ लो।"[2] नरेन्द्र जी निडर होकर ऐसा फैसला कर सकते थे क्योंकि उन्हें किसी भी वजह से बेटे पर निर्भर नहीं होना था, खासकर आर्थिक रूप से ।

स्वावलंबन

मृदुला गर्ग की 'उधार की हवा' कहानी के बाबूजी और स्वयं प्रकाश की 'कहाँ जाओगे बाबा' कहानी के पिताजी भी विपरीत परिस्थितियों में अपने-आप को बनाए रखते हैं । रिडायरमेंट के बाद उनके पास जो कुछ भी

1. मृदुला गर्ग, अलग-अलग कमरे, संगति-विसंगति, पृ. 368
2. वही - पृ. 370

बचा होता है, वह हैं उनकी अपनी कुछ ज़मीन । बच्चे चाहते हैं कि उसे बेचा जाए लेकिन वे कदापि इसकेलिए तैयार नहीं होते, जिसके कारण उनके और बच्चों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । 'उधार की हवा' के बाबूजी कहते हैं - "तू मर गया तो भी मैं अपना हिस्सा नहीं बेचूंगा।"[1] उनके बेटे मनीश और गिरीश उनकी जिम्मेदारी उठाने केलिए कभी तैयार नहीं होते हैं उलटा उनकी बाकी दौलत भी हडपना चाहते हैं । इसी वजह से बाबूजी भी बेटों की लाख कोशिशों के बावजूद अपना खेत नही बेचते । 'कहाँ जाओगे बाबा' का मास्टर रामरतन वर्मा भी अपनी ज़िन्दगी की पूरी कमाई एक घर बनाने में लगा देते हैं । शहर की व्यवस्था से दूर गांव में वे एक ज़मीन खरीदते हैं और वहाँ मकान बनाते हैं । लेकिन जब मकान बन जाता है तो गांव का माहौल भी बदल चुका होता है । गाँव भी धीरे-धीरे शहर में तबदील होने लगता है। जिससे उन्हें बहुत दुःख होता है । रामरतन वर्मा का बेटा चाहता है कि उस ज़मीन और घर को बेचा जाए । लेकिन अपने हिस्से की वह थोडी सी ज़मीन बेचने केलिए वे तैयार नहीं होते । वह घर ही उनका एकमात्र संपत्ति था । उसे बेचकर वे अपने को निस्सहाय और बेटे के अधीन करना नहीं चाहते थे। बच्चों की विकट मानसिकता से आज के माँ-बाप वाकिफ है और वे सावधान रहते हैं । पहले की तरह अपनी सारी संपत्ति-जायदाद वे बच्चों के नाम कर फिर पछताना नहीं चाहते हैं ।

---

1. मृदुला गर्ग, उधार की हवा, संगति-विसंगति, पृ. 423

दयानन्त आनन्द की 'सीमेण्ट में उगी घास' की पाण्डेजी रिटायर्ड होने के बाद अपने घर का एक हिस्सा किराए पर दे देते है । अपने घर पर वे सब्जियाँ लगाते हैं और बाज़ार बेचते है साथ ही साथ ट्यूशन भी लेते हैं । पडोस के सभी लोग यहाँ तक उनकी पत्नी और बच्चे भी उन्हें कंजूस मानते हैं । उनके पडोसी कहते हैं - "इसका एक-एक पत्ता बाज़ार में बिकने जाएगा। आपके पाण्डेजी इस पर किसी को हाथ भी नहीं लगाने देते।"[1] यह सब जानते हुए भी पाण्डेजी अपने व्यवहारों से पीछे नहीं हटते हैं और अपने कामों में लगे रहते हैं । उनकी शेष ज़िन्दगी की कमाई सिर्फ यही थी । इस प्रकार दूसरों की घृणा के शिकार बनते हुए भी पाण्डेजी अपने को आर्थिक तंगियों से दूर रखते हैं ।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू रिटायरमेंट के बाद दूसरी नौकरी में लग जाते हैं । सालों बाद वे परिवार के साथ ज़िन्दगी बिताने केलिए आते हैं । लेकिन बिना पैसों के उन्हें कोई स्वीकृति नहीं मिलती बल्कि उन्हें एक बोझ ही समझा जाता है । अपने परिवारवालों के मनोभाव को समझते गजाधर बाबू वापस नौकरी पर लग जाते हैं । वे कहते हैं - "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गयी है; खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आयें, वही अच्छा है।"[2] हमारे चारों ओर ऐसे कई

---

1. (सं) गिरिराज शरण, सिमेण्ट में उगी घास, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 57
2. (सं) गिरिराज शरण, वापसी, वृद्धावस्था की कहानियाँ, पृ. 25

गजाधर बाबूऐं हमें देखने को मिलेंगे जो मज़बूरन ही सही दूसरी नौकरी ढूँढ निकालते हैं ताकि अपने परिवारवालों केलिए एक फालतू चीज़ न बने और दूसरों पर निर्भर हुए बिना अपना आय बना सके ।

वृद्ध संगठनों में सदस्यता

वर्तमान समय में संगठनों की कोई कमी नहीं है । छोटे तबके के लोगों से लेकर बडे-बडे उद्योगपतियों के बीच तक कई संगठन पनपे-हुए हैं। कुछ लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और धनार्जन केलिए संगठनों में सदस्यता लेते हैं तो कुछ लोग संगठों के ज़रिए अपना धन और यश का दिखावा करते हैं । ऐसे संगठनों केलिए उदाहरण है - लयनस क्लब, रोट्टरी क्लब आदि । साथ ही साथ ये संगठनाऐं लोगों के कल्याण केलिए भी कई कार्यक्रम करते हैं । जो भी हो आधुनिक समय में इस तरह के संगठनों का होना अनिवार्य हो गया है क्योंकि ऐसी जगहों में हमें रोज़ की भाग-दोड़ से कुछ मुक्ति मिलती है । दूसरों से मिलने-जुलने से और वक्त बिताने से मन का तनाव भी हल्का हो जाता है ।

युवा पीढ़ी के समान बूढ़ों केलिए भी आजकल संगठनों का होना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि वर्तमान माहौल में युवा पीढ़ी से ज़्यादा पुरानी पीढ़ी ही जीवन संघर्ष से गुज़र रही है । वृद्ध संगठनों में ऐसे कई कार्यक्रम चलते हैं जिनसे वृद्ध-जनों का वक्त भी गुज़र जाता है और साथ ही साथ मन

बहलाव भी होता है । पूजा-पाठ, व्यायाम, मनोरंजन आदि के ज़रिए ऐसे संगठन वृद्धजनों को सक्रिय रखते हैं । तो वृद्धजनों को भी ऐसे संगठनों में सदस्यता लेने की आवश्यकता है । समकालीन कहानियों के कई वृद्धजनों ने वृद्ध संगठनों में सदस्यता लेकर अपनी ज़िन्दगी की ऊब और व्यथा को अपने से दूर रखने का प्रयास किया ।

राधेश्याम तिवारी की कहानी 'टुडे कॉलम' में ऐसे एक ग्रूप का चित्रण हुआ है जो रोज़ अकबार के 'टुडे कॉलम' देखकर अपना दिनभर का कार्यक्रम तय करते हैं । ये ग्रूप जहाँ-जहाँ गोष्ठियाँ होती हैं, वहाँ पहुँच जाता है और गोष्ठियों में भाग लेकर अपना समय बिता लेता है । कुलवन्त ऐसा ही एक पात्र है जो बेकार बैठकर अपने-आप को फाल्तू नहीं बनाना चाहता है । वह कहता है - "कुछ मेरे पुराने मित्र हैं । हम लोग रोज़ मिलते हैं । यहाँ रहकर करेंगगे भी क्या?"[1] ये लोग गोष्ठियों में भाग लेते हैं और वहाँ चलते कार्यक्रमों पर चर्चा करते हैं, जिससे जानकारी भी बढ़ती है और वक्त भी निकल जाता है ।

सिद्धेश की कहानी 'समय' में लोग भक्त संगठनों में भाग लेकर अपना वक्त निकाल लेते हैं । रेलवे प्लेटफार्म में रोज़ ये बूढे लोग इकट्ठे होते हैं और पूजा-पाठ और प्रवचन सुनने में समय निकालते हैं । कहानी का

---

1. डॉ. शिवनारायण, टुडे क़लम, वृद्धजीवन की कहानियाँ, पृ. 54

एक पात्र अशोक बताता है - "यहाँ आकर थोडी देर मन को शांति मिलती है ।"[1] अशोक के ज़रिए लेखक यही बताना चाहते हैं कि व्यग्र और व्यस्त ज़िन्दगी में पूजा-पाठ और भक्ति मार्ग एक हद तक अच्छा सहारा है । समाज और परिवार की उपेक्षा द्वारा उत्पन्न मानसिक उथल-पुथल को उतारने का अच्छा उपाय है भक्ति संगठन।

निष्कर्ष

उपर्युक्त कहानियों के ज़रिए समकालीन लेखकों ने वर्तमान समय की इस भयंकर समस्या का हल निकालने की कोशिश की है । वृद्धजन योजनाबद्ध होकर अपने वार्धक्य को समय और संदर्भ के अनुसार मोड़ लेते हैं तो वे किसी केलिए भी अनुपयोगी और बोझ न बनेंगे । अपने को आर्थिक रूप से भी सशक्त रखकर वे बच्चों की गुलामी या शरण से अपने को दूर रख सकते हैं । अपनी ज़िन्दगी वे खुद तय करते हैं और खुद जीते हैं । समकालीन कहानियाँ वर्तमान समय के दुःखी और चिन्तित वृद्धजनों केलिए उत्साह एवं उम्मीद प्रदान करने में सहायक हैं ।

❖ ❖ ❖

1. सिद्धेश, समय, वागर्थ दिसंबर 1999, पृ. 124

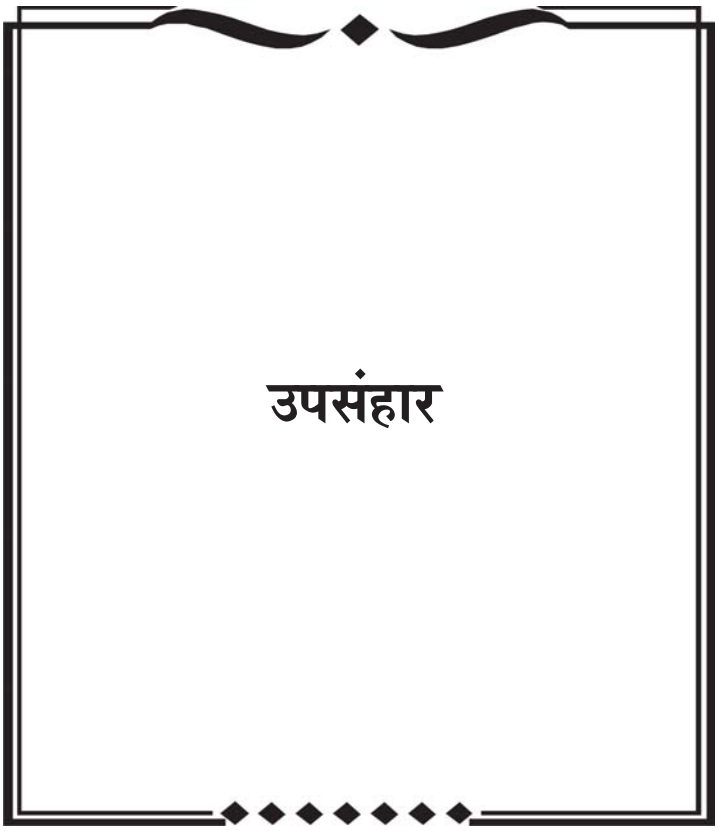

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य हमेशा ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ है । साहित्य की विभिन्न विधाओं के ज़रिए अपने समय के जीवन यथार्थ को दिखाया जाता है, जिन में कहानी का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है । अन्य विधाओं की अपेक्षा छोटी और ललित होने के कारण ही कहानियों के ज़रिए लेखक अपने मन की बातों को असानी से लोगों तक पहूँचा सकता है, हालाकि इसकेलिए कविता भी सशक्त माध्यम है । कल्पना के धरातल से उतरकर समकालीन कहानी, आज मनुष्य के और उसके जीवन यथार्थ, विसंगतियाँ के अधिक निकट बन गया है । समाज में व्याप्त रूढ़ियों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए उसके खिलाफ वह आवाज़ बुलंद करती हैं । हमारे चारों ओर ऐसी कई समस्याएँ है जो बहुत पहले से ही समाज में व्यापक हैं और जो वर्तमान समय में और अधिक गहरी बन गई है । इन समस्याओं को अनदेखा किया जाता था अथवा 'साधारण सी बात' मानकर नकारा जाता था, जिनमें प्रमुख है 'वृद्ध समस्या'।

वृद्ध समस्याओं पर विचार करने से पहले हमें कई अन्य पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है । कोई भी समाज या व्यक्ति अपने समय की परिस्थितियों से बहुत अधिक प्रभावित रहता है । आज का समय नव उपनिवेशवाद और भूमण्डलीकरण का समय है । प्रत्येक व्यक्ति इस दौर से होकर गुज़र रहा है । इसलिए व्यक्ति और उसके परिवेश को परखने से पहले इन पहलुओं को समझना ज़रूरी है । नवउपनिवेशवाद और भूमण्डलीकरण

के चंगुल में फँसी वर्तमान पीढ़ी ने एक प्रकार की उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को अपना लिया है । आधुनिक समय में पनपे उपयोगितावादी दृष्टिकोण के कारण नई पीढ़ी हर चीज़ को उसकी उपयोगिता के आधार पर ही परखती है ।इस दृष्टिकोण ने आपसी संबन्धों को जटिल बना दिया है ।

वर्तमान नई पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति की 'Use and throw culture' से बहुत अधिक प्रभावित है । इस कारण वे अपने वृद्ध माँ-बाप को केवल एक भौतिक वस्तु की तरह मानकर उनका मात्र उपभोग करती है और बाद में कूडें के समान उनकी उपेक्षा कर देते हैं । इस प्रकार घर पर व्यर्थ बैठे वृद्ध-जन उनकेलिए उपयोग-शून्य एवं बोझ बन जाते हैं । समकालीन कहानीकारों ने इस गंभीर समस्या पर प्रकाश डालते हुए पाठकों को जागृत कराने का प्रयास किया है ।

समकालीन रचनाकारों ने वृद्धजनों की शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक शिथिलताओं पर प्रकाश डाला है । वृद्धावस्था तक आते-आते मनुष्य की शारीरिक स्थिति में बहुत अधिक बदलाव आ जाते हैं । उम्र के बढ़ने के साथ-साथ उसकी शारीरिक क्षमताएँ घटने लगती हैं । जिसके कारण व्यक्ति कमज़ोर हो जाता है । वृद्धावस्था में व्यक्ति आर्थिक रूप से भी कमज़ोर हो जाता है । नौकरी से अवकाश प्राप्त हो जाने पर अथवा शारीरिक श्रम की क्षमता में ह्रास आ जाने के कारण व्यक्ति की आय घट जाती है जिसके

कारण उन्हें आर्थिक तंगी अनुभव करना पडती है और बच्चों पर निर्भर होना पडता है । यह समस्या पैदा करता है। शारीरिक और आर्थिक कमज़ोरियाँ वृद्ध व्यक्तियों में मानसिक तनाव ला देता है । मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है और अपने परिवार और समाज के प्रति उसका व्यवहार अरुचिकर हो जाता है । इन तीनों पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उससे उत्पन्न समस्याओं को उकेरने की कोशिश समकालीन कहानीकारों ने की है ।

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के ज़रिए वृद्धजनों के अकेलापन, उनका आत्म संघर्ष एवं अनाथत्व को प्रस्तुत किया है । वर्तमान समय के माहौल जिस तरह से नई पीढ़ी की मान्यताओं को बदल रही है उसी गति से पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं को नहीं परिवर्तित करते है । इस प्रकार दोनों पीढ़ियों के जीवन मूल्यों के बीच गहरा अंतराल आ जाता है, परिणामस्वरूप नई पीढ़ी के दृष्टिकोण और जीवन मूल्यों को पुरानी पीढ़ी नकारती है और पुरानी पीढ़ी के मूल्यों को नई पीढ़ी मानती नहीं है । इस तरह उत्पन्न संघर्ष को स्पष्ट रूप से कहानियों में अभिव्यक्त किया गया है । अर्थ व्यवस्था पर केन्द्रित युवा पीढ़ी भौतिक लाभ के लालच में शहरों में या विदेशों में बस जाते हैं । इस कारण बच्चों से मिलनेवाले भौतिक सहारे और भावनात्मक सहयोग से भी वे वंचित रह जाते हैं । इसका भी कहानियों में खूब चित्रण हुआ है ।

समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के ज़रिए अपने प्रतिरोध को भी प्रस्तुत किया है। समकालीन कहानियों के वृद्धजन अपने वार्धक्य की ज़िन्दगी को योजनाबद्ध कर लेते हैं । मित्रों के एवं वृद्ध संगठनों की सदस्यता के सहारे अपने अकेलेपन को दूर करते हैं । वे अपनी कुछ कमाई रखते हुए आर्थिक रूप से भी दृढ़ हो जाते हैं और इस प्रकार अपने जीवन को अर्थपूर्ण और सुरक्षित बना लेते हैं ।

समकालीन हिन्दी कहानियों में चित्रित वृद्ध जीवन के यथार्थ के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति चाहे कितना भी सभ्य और परिष्कृत क्यों न हो, वह किसी न किसी मोड़ पर स्वार्थी बन जाता है । वृद्धों की उपेक्षा भी इस स्वार्थता का ही परिणाम है । इस समस्या से निपटने केलिए वृद्ध जनों को अपने आप को नए जीवन मूल्यों के साथ जोड़ना होगा और नई पीढ़ी को अपने मूल्यों को श्रेष्ठ समझने के साथ-साथ पुराने मूल्यों को मान्यता देनी होगी । जब तक ये दोनों पीढ़ियाँ एक दूसरे को समझकर और सहकर साथ-साथ नहीं बढ़ेंगी ये समस्याएँ भी बनी रहेंगी ।

❖ ❖ ❖

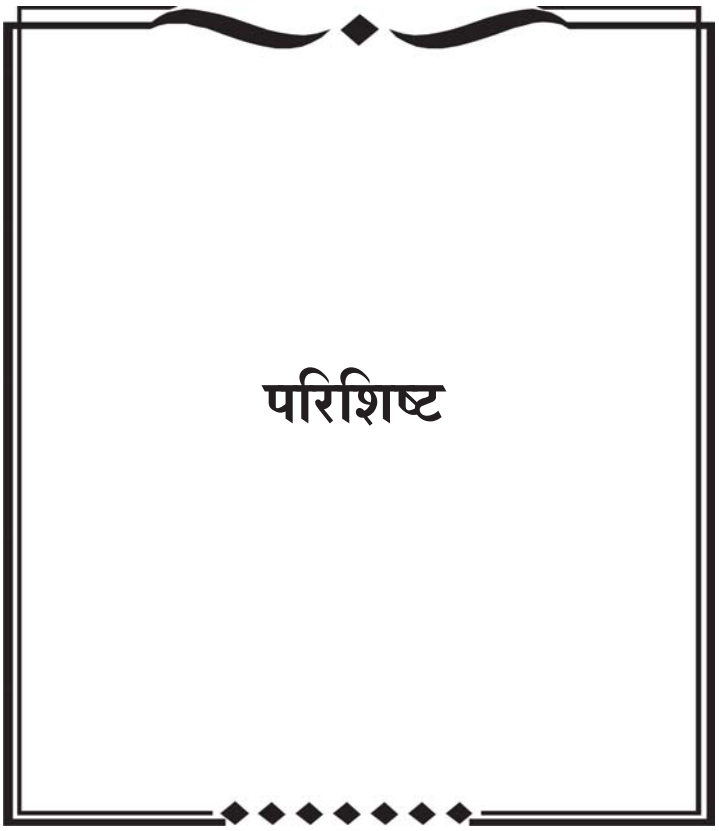

परिशिष्ट

शोधछात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. समकालीन कहानियों में वृद्धजीवन का यथार्थ -संग्रथन (शोध पत्रिका) सितंबर 2014
2. 'बिना दीवारों के घर' में भारतीयता की तलाश-अनुशीलन (शोध पत्रिका) जनवरी 2012
3. अपने-अपने अजनबीः एक पुर्नपाठ - अनुशीलन (शोध पत्रिका) जुलाई 2011

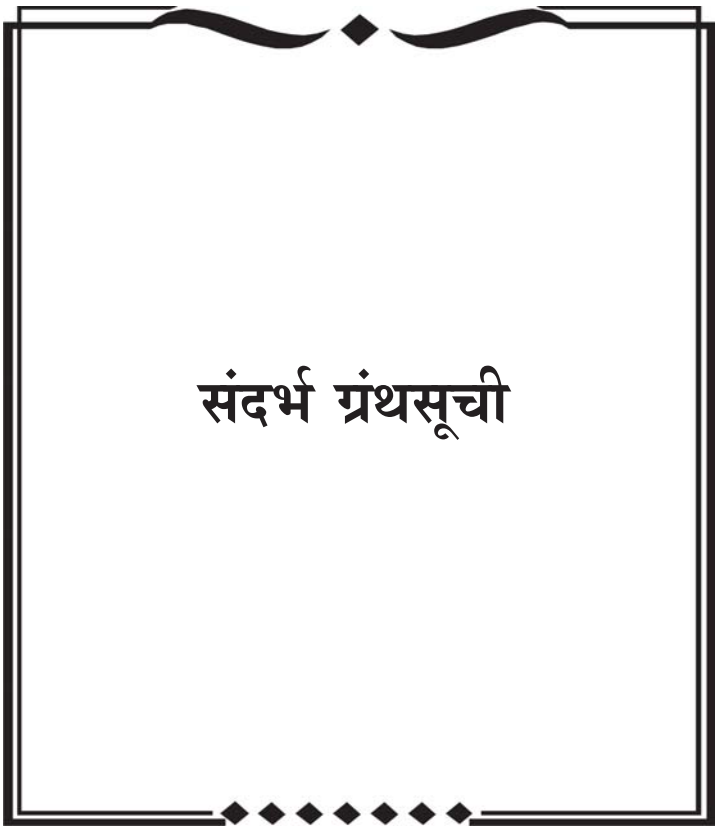

संदर्भ ग्रंथसूची

संदर्भ ग्रन्थसूची

मूलग्रंथ

1.	अकेले होते लोग	स्वाति तिवारी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2006
2.	अम्मा का चरमा	कमल कपूर कल्याणी शिक्षा परिषद् नई दिल्ली, प्र. सं. 2009
3.	आधी सदी का सफरनामा	स्वयं प्रकाश राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1996
4.	इक्कीस कहानियाँ	सूर्यबाला सुनील साहित्य सदन दरियागंज, नई दिल्ली सं. 2011
5.	कहानी उपखान	काशीनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र. सं. 2003
6.	खाली लिफाफा	राजी सेठ यात्रा बुक्स, नई दिल्ली प्र. सं. 2000
7.	चिन्हार	मैत्रेयी पुष्पा वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1997
8.	तिरिछ और अन्य कहानियाँ	उदय प्रकाश वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2001

9.	परिणति तथा अन्य कहगानियाँ	हिमांशु जोशी मानसी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2008
10.	मेरी प्रिय कहानियाँ	मन्नु भण्डारी राजपाल एण्ड सन्स नई दिल्ली, दू. सं. 1975
11.	यानी कि एक बात थी	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि नई दिल्ली, प्र. सं. 1990
12.	विशिष्ट कहानियाँ	सुदर्शन वशिष्ठ शारदा प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2009
13.	वृद्धजीवन की कहानियाँ	सं. डॉ. शिवनारायण साहित्य भारती दिल्ली, प्र. सं. 2012
14.	वृद्धमन की कहानियाँ	सं. डॉ. शीतांशु भरद्वाज नालंदा, प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 2012
15.	वृद्धावस्था की कहानियाँ	गिरिराज शरण प्रभात प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 1986
16.	सच तो यह है	उषा महाजन कल्याणी शिक्षा परिषद् नई दिल्ली, प्र. सं. 2007

17. सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ — शैलेश मटियानी, अनुभूति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1998

18. सर्कस — विवेकी राय, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली, प्र. सं. 2005

19. सोबती एक सोहबत — कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि दिल्ली, प्र. सं. 1989

20. संगति - विसंगति — मृदुला गर्ग, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र. सं. 2004

21. संगति-विसंगति — मृदुला गर्ग, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008

22. संपूर्ण कहानियाँ — हृदयेश, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2011

सहायक ग्रंथ

1. अयोध्याः कुछ सवाल — मालिनी भट्टाचार्य, सहमत, 8 विट्ठलभाई पटेल हाउस, नई दिल्ली, प्र. सं. 1994

2. आज का हिन्दी साहित्यः संवेदना और दृष्टि — रामदरश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1975

3.	आधुनिकता के आईने में दलित	सं. अभय कुमार दूबे वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2005
4.	आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ	डॉ. ज्ञान चन्द्र शर्मा राधा पब्लिकेशन दिल्ली, प्र. सं. 1996
5.	आतंक की चुनौती	वीरेन्द्र कुमार गौड़ सामाजिक प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2010
6.	आलोचना की सामाजिकता	डॉ. मैनेजर पाण्डेय वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2005
7.	एक कहानी लगातार	रामदरश मिश्र प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1997
8.	औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारधारात्मक संघर्ष	के.एन पणिक्कर राधा पब्लिकेशन दिल्ली प्र. हिन्दी सं 1995
9.	औरतः अपने लिए	लता शर्मा सामाजिक प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2008
10.	कथा लेखिका मन्नु भण्डारी	डॉ. व्रजमोहन शर्मा कादम्बरी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1991
11.	कहानी अनुभव और अभिव्यक्ति	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1996

12.	कहानी का वर्तमान	जानकी प्रसाद शर्मा राजसूर्य प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2000
13.	कहानी की समाज शास्त्रीय समीक्षा	रमेश उपाध्याय नमन प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1999
14.	कहानीः समकालीन चुनौतियाँ	शंभु गुप्ता वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2000
15.	जनवादी कहानी	रमेश उपाध्याय वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2000
16.	दलित चिन्तन के विविध आयाम	आ. ला. ऊके शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ट डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, प्र. सं. 2009
17.	दलित चेतना साहित्य	(सं) रमणिका गुप्ता रुचिका प्रिंटर्स दिल्ली, प्र. सं. 2009
18.	दलित साहित्य की भूमिक	हरपाल सिंह 'अरुष जवाहर पुस्तकालय मथुरा, प्र. सं. 2009
19.	धर्म और समाज	डॉ. एस राधाकृष्णन चेतन पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली, प्र. सं. 2011

20.	धर्म राजनीति एवं मूल्यहीनता	खुश्बू सुधा पोइन्टर पब्लिशेर्स जयपूर्, प्र. सं. 1999
21.	नवै दशक की हिन्दी कहानियाँ में मूल्य विघटन	राहुल भरद्वाज जवाहर पुस्तकालय मथुरा, प्र. सं. 1999
22.	पर्यावरण और जल प्रदूषण	निशांत सिंह ड्रीम बुक सर्वीस नई दिल्ली, प्र.सं. 2003
23.	पर्यावरण और जीव	प्रेमानन्द चन्देला हिमाचल पुस्तक भण्डार दिल्ली, प्र. सं. 2007
24.	पर्यावरण विज्ञान	डॉ. गया प्रसाद गुप्ता जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र. सं. 2010
25.	बाज़ार और समाजः विविध प्रसंग	गिरीश मिश्र स्तराज प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2009
26.	भारतीय नारी अस्मिता की पहचान	उमा शुक्ल लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2007
27.	भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति	बृंदा कारात ग्रन्थ शिल्पि दिल्ली, प्र. सं. 2008
28.	भारतीय संस्कृति के आधार-स्रोत	डॉ. रामशरण गौड़ स्वराज प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 1998

29. भूमण्डलीकरण ब्रोड- संस्कृति और राष्ट्र — प्रभा खेतान, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2007

30. भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ — सच्चिदानन्द सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2003

31. भ्रष्ट समाज — चंदन मिश्रा, किताब घर, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001

32. मुख्यधारा और दलित साहित्य — ओम प्रकाश वात्मीकी, सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2010

33. रघुवीर सहाय रचनावली — (सं) सुरेश शर्मा, रामकमल प्रकाश प्रा. लि, नई दिल्ली, प्र. सं. 2000

34. वैश्वीकरण के युग में भारत — पी.वी. राजीव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र. सं. 2001

35. वृद्धावस्था का सच — विमला लाल, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008

36. वृद्धावस्था में कैसे जियें — डॉ. नीरज पाठक, रेणु पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्र. सं. 2010

38. संस्कृति की धरोहर — डॉ. कन्हैया लाल अवस्थी, आशीष प्रकाशन, कानपूर, प्र. सं.2006

39.	संस्कृत, संस्कृति और पर्यावरण	डॉ. प्रवेश सक्सेसा परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, प्र. सं. 1993
40.	सत्तरोत्तर हिन्दी कहानियों में बदलते मानसिक संबन्ध	अजिता के नायर जवाहर पुस्तकालय मथुरा, प्र. सं. 2001
41.	समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज	डॉ. प्रेम सिंह डॉ. रिम्पी खिल्लन के.के. पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्र. सं.
42.	समकालीन कहानी का इतिहास	डॉ. अशोक भाटिया भावना प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं.1998
43.	समकालीन कहानी का समाज शास्त्र	देवेन्द्र चौबे प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्र. सं. 2001
44.	समकालीन कहानी का पहचान	नरेन्द्र मोहन प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1987
45.	समकालीन सिद्धान्त और इतिहास	विश्वंभरनाथ उपाध्याय द मैकमिल कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र. सं. 1976
46.	समकालीन हिन्दी कहानीः यथार्थ के विव्ध आयाम	डॉ. जानवती अरोरा हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली, प्र. सं.1994

47.	समकालीन हिन्दी उपन्यास	डॉ. मोहनन वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 2013
48.	समाजवाद का भविष्य	राजकिशोर प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्र. सं. 2000
49.	साहित्य और परिवेश	वेद प्रकाशन अमिताभ जवाहर पुस्तकालय मधुरा, प्र. सं. 2002
50.	साहित्य और संस्कृति	अमृतलाल नागर राजकमल एण्ड सन्ज़ नई दिल्ली, प्र. सं. 1994
51.	साहित्य और संस्कृति	मोहन राकेश राधाकृष्ण पब्लेकेशन नई दिल्ली, प्र. सं.1975
52.	साठोत्तरी कहानियों में मानवीय मूल्य	विनीता अरोरा नमन प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं. 1999
53.	सांप्रदायिकताः अतीत और वर्तमान	अरुण कुमार प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्र. सं. 1996
54.	स्त्री का समय	क्षमा शर्मा मेधा बुक्स नई दिल्ली, द्वि. सं. 2001
55.	हिन्दी उपन्यास में दलित जीवन	डॉ. शंभूनाथ द्विवेदी पूजा पब्लिकेशन कानपूर, प्र. सं. 2013

56. हिन्दी कथा यात्रा — विनोदबाला अरुण
विद्या विहार
नई दिल्ली, प्र. सं. 1997

57. हिन्दी कहानी का इतिहास — गोपाल राय
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
नई दिल्ली, प्र. सं. 2008

58. हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य — वेद प्रकाश अमिताभ
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा, प्र. सं. 2009

59. हिन्दी कहानी का समकालीन परिवेश — दिविक रमेश
ग्रन्थ केतन
दिल्ली, प्र. सं. 2011

60. हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व — डॉ. सुमन महरोत्रा
आर्य बुक डिपो
नई दिल्ली, प्र. सं. 2011

61. हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ. नगेन्द्र
मयूर पेपरबैक्स
नौएडा, प्र. सं. 1973

पत्र-पत्रिकाऐं

1. आजकल - मार्च 2006
मई 2008
जनवरी 2009
अप्रैल 2011

2. आलोचना - जनवरी - मार्च 2003

3. कथादेश - अप्रैल 2003

			जून - 2003
			अगस्त - 2005
			मई - 2006
			जनवरी - 2009
4.	खोज	-	जनवरी 2009
			सितंबरर - 2010
5.	गगनांचल	-	जनवरी - जून 1999
6.	दस्तावेज़	-	जुलाई- सितम्बर 2012
7.	नई धारा	-	अक्तूबर 2010
			जून 2011
			मई 2013
8.	नया ज्ञानोदय	-	फरवरी 2006
			जूलाई 2008
			जनवरी 2010
9.	मधुमति	-	जनवरी 1999
			अक्तूबर 1999
			जनवरी 2001
			मार्च 2011
			अक्तूबर 2011
10.	राष्ट्रभाषा	-	मई 1997
11.	वागर्थ	-	दिसम्बर 1999
12.	वाङ्मय	-	जुलाई-दिसंबर 2000
13.	सन्देश	-	मई 2011

14.	समयांतर	- फरवरी 2012
15.	सम्मेलन	- पौष -फालगुन संतत, 2064
16.	समीक्षा	- जुलाई - सितंबर 1997
		जनवरी - मार्च 2000
17.	साक्षात्कार	- अप्रैल 2012
18.	साहित्य अमृत	- जून 2004
		मार्च 2005
		अगस्त 2006
19.	हंस	- फरवरी 1996
		मार्च - 2008
		अक्तूबर - 2008
		मार्च - 2010
		दिसंबर - 2010
		जनवरी - 2012
		दिसंबर - 2012
		मार्च - 2014